*3'1

इस अंक में

सत्संग-समाचार

सद्ग्रंथ चर्चा

साधना-उपासना

दृष्टांत एवं प्रसंग

पद्य-कविताएँ

धारावाहिक

विशेष

वर्ष : ८ अंक : २

रस-बनमाली

आध्यात्मिक मासिक पत्रिका

मार्च २००५/फाल्गुन २०६१वि.

मानद सम्पादक :
श्रीमती रंजना शर्मा

सम्पादक :
गोपालदास अग्रवाल

प्रकाशक एवं प्रबन्ध सम्पादक :
कमलेश बाजोरिया

संवाद-प्रतिनिधि :
कैलाशनाथ पाण्डेय

मूल्य : १० रुपये

वार्षिक	१००/-रु.
छः वर्षीय	५००/- रु.
बारह वर्षीय	१०००/-रु.
पेट्रन निधि	५०००/-रु.
सेवा निधि	(स्वैच्छिक)

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति की ओर से कमलेश बाजोरिया द्वारा कावरा ऑफसेट्स, रवीन्द्रपुरी, वाराणसी में मुद्रित एवं के. ४६/१०८ए., विशेश्वरगंज, वाराणसी से प्रकाशित।
सम्पादक : गोपालदास अग्रवाल

अहंकार

अहंकार अहंता का विकृत बोध है, जो वास्तव में मिथ्याबोध है इस अहंकार का ठीक वैसा ही मिथ्याआवरण है जैसे फूला हुआ गुब्बारा, न जाने कब फूट जाये, कहा नहीं जा सकता। यह अपने मिथ्यास्वरूप में प्रसन्न होता है।

प्राचीन ऋषि-मुनियों की धारणानुसार अहंकार भ्रम और भ्रान्ति है, जो स्वयं की ख्याति का प्रदर्शन करने हेतु कदम-कदम पर आडम्बर रचने के लिए प्रेरित करता है। इस यथार्थ को न जानने वाला अहंकारी होता है और जो इस रहस्य को जानने वाले हैं, उन्हें ही यथार्थवादी कहा जाता है।

अहंकार अज्ञानता, अविवेक, हठ व अग्रहणशीलता का द्योतक है। इसके वर्तमान परिवेश का आकलन नहीं होता, बल्कि यह तो भ्रम और अदूरदर्शिता की स्थिति उत्पन्न करता है। अहंकारी दूसरों जैसा श्रेष्ठ व गुणवान बनना नहीं चाहता, बल्कि उनसे कई गुना श्रेष्ठ दिखना चाहता है। वह अन्य की तुलना में अपने को अतिविशिष्ट मानं प्रदर्शन अधिक करता है। इसमें सहायक उसकी शारीरिक बलिष्ठता, सुंदरता, उसकी पद-प्रतिष्ठा की संभावना हो सकती है। प्रायः देखने में आता है कि बार-बार उसका भ्रम ही उसके अहंकार का निमित्त बना होता है। ऋषि मनीषी अपनी सूक्ष्म दृष्टि से 'अहं' और 'अहंकार' के अन्तर को जानते ही नहीं, बल्कि साक्षीभाव में रहकर अनुभव करते हैं। उनके मतानुसार अहंता का स्वरूप है- आत्मा और प्रकृति का सम्बन्ध-सूत्र, दोनों के बीच की गाँठ। अहंता वह दिव्य झरोखा है, जिससे आत्मा प्रकृति के सौंदर्य को निहारती है, जबकि लोग अहंकार का अर्थ स्वयं को अहम से तदाकार कर लेना मानते हैं। स्वयं को उसका झरोखा मान बैठते हैं। यही विकृत बोध है। इसकी अधिकता से व्यक्ति और व्यक्तित्व दोनों का विनाश होता है। अहंकार स्वाभिमान नहीं है, दम्भ है। स्वाभिमान का भाव है- आत्मा की गरिमा में आस्था, सर्वसिद्ध नीतियों का सम्मान और जीवन मूल्यों में विश्वास। स्वाभिमान में मानव जीवन की श्रेष्ठता व दिव्यता के नियम जैसे विपरीत किसी नियम, नीति व विधिविधान को नहीं मानता। केवल मनमाने क्रियाकलाप करता रहता है, अपनी आत्मप्रशंसा के सर्वनाशी विश्वास में घूमता फिरता है। स्वामी विवेकानन्द ने तो अहंकार को समस्त आसक्ति की जड़ माना है। सभी दिव्यद्रष्टाओं ने समस्त दुखों की उत्पत्ति एकमात्र आसक्ति को ही कहा है। अतः अहं में आसक्ति का स्वीकारभाव ही दुखों का मूल कारण है। अहंकारी प्रचंड महत्वाकांक्षी होता है। उसमें किसी श्रेष्ठ व्यक्तित्व की भूख रहती है, उसके लिए वह श्रेष्ठता, मानवता और अपनत्व का गला घोंटने में भी नहीं चूकता। उसकी संवेदना-भावना पाषाणवत शुष्क होती है। अहंकारी अपने व्यक्तित्व का विनाश करता है, विकास नहीं। वह अपने को झुकाना, मिटाना नहीं जानता और इसी कारण वह गुण ग्रहण करना नहीं, बल्कि छीनना पसंद करता है। अहंकार मानव प्रकृति में धागे के समान पिरोया हुआ है। यह सभी विचारों और क्रियाओं के पीछे छाया के समान मंडराता रहता है।

श्रीकृष्ण का जन्म-महोत्सव

गतांक से आगे ......

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

इधर गोदोहन में संलग्न व्रजराज नन्दजी के पास सूचना देने परिचारिका आयी। प्रतिदिन का नियम है- व्रजेन्द्र आधी रात ढलते ही स्वयं गोष्ठ में चले जाते हैं, गायों की सँभाल करते हैं। आज भी आये थे। अपने इष्टदेव नारायण का स्मरण करते हुए एक गाय के समीप खड़े थे। परिचारिका ने कहा—"महाभाग! आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।" व्रजराज को प्रतीत हुआ मानो हठात् किसी ने कानों में अमृत उड़ेल दिया- नहीं, नहीं, उनके चारो ओर अमृत का महासागर लहराने लगा। वे उनमें निमग्न हो गये; इतना ही नहीं आनन्दमन्दाकिनी की प्रबल धारा से उस महासागर में एक आवर्त्त (भँवर) बन गया है। व्रजराज उस आवर्त्त में फँसकर चक्कर लगा रहे हैं। आनन्दमन्दाकिनी व्रजराज को अपने भुजपाश में लपेटकर घुमा रही है—

प्रविष्ट इवामृतमहार्णवेषु, आलिङ्गित इवानन्दमन्दाकिन्या।

व्रजेन्द्र नन्दबाबा बाह्यज्ञान खोकर अन्तश्चेतना के जगत् में जा पहुँचे। एक अतीत दृश्य सामने आ गया-व्रजराज व्रजरानी से कह रहे हैं-'प्रिये! स्पष्ट जानता हूँ, मेरे द्वारा सम्पादित इन पुत्रेष्टि आदि अनेक यज्ञानुष्ठानों की सफलता असम्भव-सी है; फिर भी परिजनों, गोपबन्धुजनों का आग्रह देखकर आयोजन स्वीकार कर लेता हूँ। संकल्प के अनुरूप ही तो परिणाम होगा। असम्भव वस्तु के लिए किये गये संकल्प की सफलता कैसे सम्भव है? अनुष्ठान आरम्भ करते हुए जब मैं संकल्प करने बैठता हूँ तो चित्त एक अनोखे पुत्र की कल्पना कर बैठता है। तू ही बता, भला, मेरे इष्टदेव नारायण से अधिक सुन्दर त्रिलोक में, त्रिकाल में भी कोई सम्भव है क्या? असम्भव! सर्वथा असम्भव! पर चित्तभूमिका में

ठीक संकल्प के क्षण ऐसे ही एक, इष्टदेव नारायण की अपेक्षा भी अधिक अनिर्वचनीय अनन्त असीम सुन्दर बालक की मूर्ति अङ्कित हो जाती है। ओह! उस क्षण मैं स्पष्ट देखता हूँ— यह बालक तुम्हारी गोद में तुम्हारे दुग्धस्रावी स्तनों पर बैठकर खेल रहा है। उसके श्याम अङ्गों को, चञ्चल सुन्दर दीर्घ नेत्रों को देखकर मैं सर्वथा मुग्ध हो जाता हूँ। मुझे भ्रम हो जाता है कि यह स्वप्न है या जागृति। यह सचमुच क्या है, मैं निर्णय ही नहीं कर पाया। मन में आया, एक बार तुमसे पूछूँ कि तुम्हारे हृदय में भी ऐसी ही अनुभूति उस समय होती है क्या'—

श्यामश्चञ्चलचारुदीर्घनयनो बालस्तवाङ्कस्थले
दुग्धोगारिपयोधरे स्फुटमसौ क्रीडन्मयाऽऽलोक्यते।
स्वप्नस्तत्? किमु जागरः? किमथवेत्येतन्न निश्चीयते
सत्यं ब्रूहि सधर्मिणि! स्फुरति किं सोऽयं तवाप्यन्तरे?

व्रजरानी बोलीं— 'स्वामिन्! ठीक ऐसी ही

कल्पना मुझे भी उस समय होती है। लज्जावश अब तक आपसे न कह सकी।'

बाह्यज्ञानशून्य व्रजराज एक ही भण में इस दृश्य को देख गये। परिचारिका खड़ी रहकर इनकी दशा देख रही थी। उसको क्या पता, व्रजराज क्या देख रहे हैं। वह अन्य गोपों को लक्ष्यकर बोली- 'तुम लोग सभी चलो, गोवत्सों को छोड़ दो, दूध पी लेने दो, एक बार चलकर उस अद्भुत बालक को देखो। नेत्र शीतल हो जायेंगे। आजतक......., कहते-कहते परिचारिका वहीं बैठ गयी। नन्दराय को बुलाने आयी है, यह बात वह भूल सी गयी। उसकी आँखों के सामने प्रसूतिगृह आ गया, वहीं बैठी-बैठी वह सौन्दर्यनिधि शिशु को देखने लग गयी।

व्रजराज का मन अभी तक उसी भावस्त्रोत का रस ले रहा है। वे देख रहे हैं- हम लोगों ने एक वर्ष तक श्रीनारायण की उपासना की है। श्रीनारायण स्वप्न में दर्शन देकर कह रहे हैं-'गोपवर! वह सचमुप तुम्हारा अनादिसिद्ध पुत्र है, तुम्हारा संकल्प शीघ्र ही सत्य होगा।' इस घटना के बाद कुछ दिन बीत गये हैं। आज माघकृष्ण प्रतिपदा है, आज की रजनी एक विचित्र शोभा से सम्पन्न-सी प्रतीत हो रही है। हठात् व्रजरानी तन्द्रा से जागकर कहती है-'नाथ! अभी-अभी मैंने स्पष्ट देखा है - ठीक वही बालक तुम्हारे हृदय से निकलकर मेरे हृदय में आ बैठा है। एक आश्चर्य की बात और है। उसके सुन्दर श्याम शरीर के ऊपर एक ज्योतिर्मयी दिव्य कुमारी का मानो आवरण पड़ा हुआ है। पहली दृष्टि में वह ज्योतिमयी बालिका-सा दिखता है, पर किंचित् गम्भीरता से देखने पर उसका अप्रतिम सुन्दर श्याम कलेवर स्पष्ट दीखने लग जाता है।' सुनकर व्रजराज आनन्दमुग्ध हो गये हैं। वे स्वयं भी ऐसी अनुभूति कर चुके हैं।

उपर्युक्त घटनावली का दृश्य व्रजराज के मनोराज्य की कल्पना नहीं है। वह सर्वथा इसी रूप में घटित हो चुकी है। परिचारिका के शब्दों ने तो अतीत की स्मृति को उद्बुद्ध मात्र कर दिया, जिससे वह घटना मानो वर्तमान में अभी-अभी हो रही है, इस रूप में व्रजराज को वह दीखने लगी। जो हो, किसी अज्ञात प्रेरणा से नन्दराय के कानों में अब वह शब्दावली पुनः गूँज उठी- 'महाभाग! आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है।' नन्दराय ने आँखें खोल दी तथा वे अविलम्ब प्रासाद की ओर दौड़ पड़े। पीछे-पीछे परिचारिका भी दौड़ी। पथ में जाते हुए नन्दराय सोचते जा रहे हैं- क्या सचमुच वही, वही श्याम बालक उत्पन्न हुआ है? पर हृदय के उमड़ते हुए आनन्द-तरङ्गों से कल्पना तरङ्गित हो रही है- चञ्चल बन गयी है। फिर निर्णय कौन करे? व्रजेन्द्र निर्णय नहीं कर सके-

आह्लादेन समं जज्ञे बालः किं किं स एव सः।
एवं विवेक्तुं नन्दस्य नासीन्मतिमती मतिः।।

व्रजराज आकर प्रसूतिगृह के सामने आँगन में खड़े हो जाते हैं। प्राणों की उत्कण्ठा लेकर आये हैं कि पुत्र का मुख देखूँगा, पर देख नहीं पाते। प्रसूतिगृह के कपाट खुले हैं; पर उपनन्द-सनन्द का परिवार, पड़ोस की गोपियों की भीड़ कपाट की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ व्यवधान बन गये हैं। इससे पूर्व व्रजेन्द्र जब कभी अन्तःपुर में जाते तो गोपियाँ घूँघट की ओट कर लेतीं, किनारे हो जातीं; परन्तु आज तो आह्लादवश वे जान तक नहीं पायी कि व्रजेश्वर खड़े हैं, पथ पाने की प्रतिक्षा कर रहे हैं। नन्दराय के प्राण व्याकुल हो उठे। तत्क्षण ही उन दर्शक गोपियों के अन्तराल से कुछ क्षण के लिए एक क्षुद्र छिद्र बन गया, व्रजेश को अपने पुत्र की एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हो गयी। अहा! वही है, वही है! सचमुच वही शिशु आया है! इतने में छिद्र के सामने एक गोपी आ गयी, छिद्र बंद हो गया, व्रजराज की आँखें भी बंद हो गयीं। पर आश्चर्य है, अब मानो कोई व्यवधान नहीं। गोपेश स्पष्ट देख पा रहे हैं, प्रसूति-पर्यङ्क पर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। शिशु क्या है, मानो अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरु उद्यान का प्रफुल्ल कुसुम हो, नहीं नहीं, समस्त उपनिषद्रूप कल्पलता-श्रेणी का मधुर फल हो।

क्रमशः ....

सुख कामना की पूर्ति में नहीं उसके त्याग में है

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा
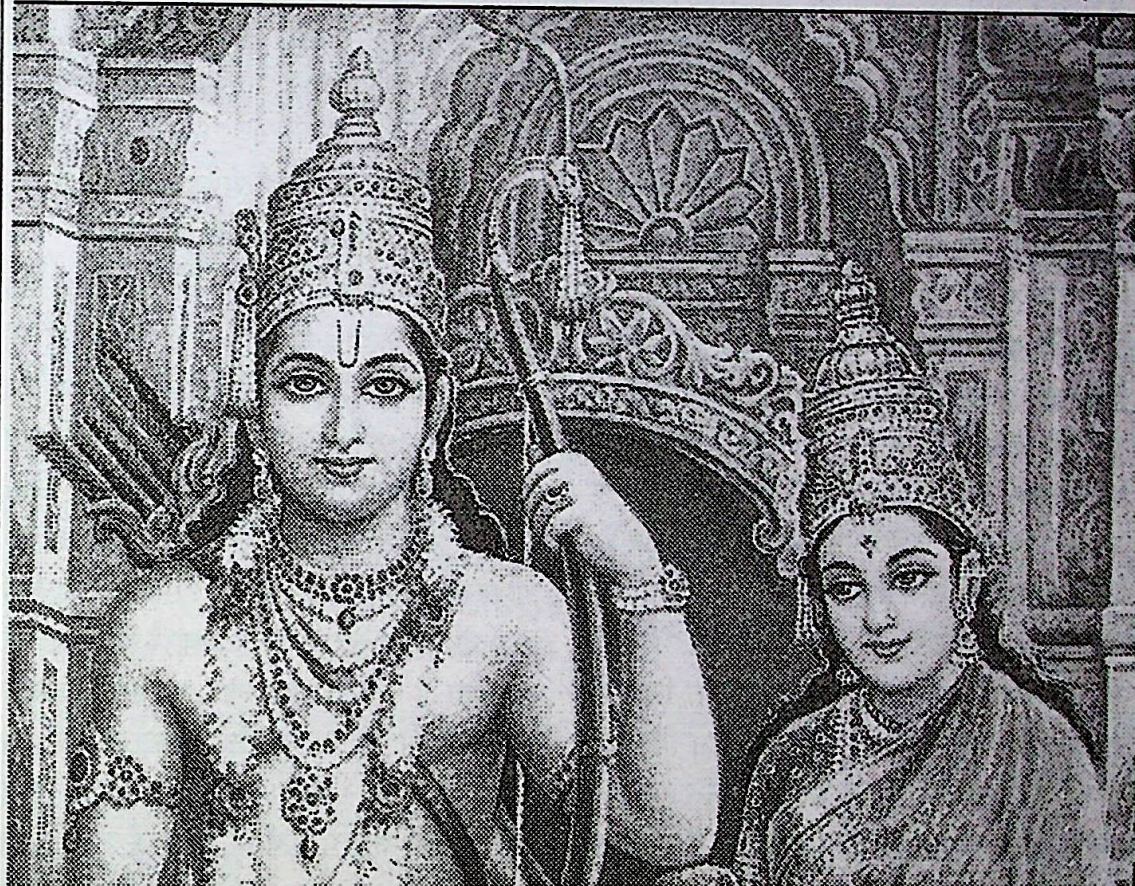
कामनाओं की पूर्ति में ही सुख है, इस धारणा को बड़ी आशा के साथ अपने हृदय में संजोए हुए, कभी न तृप्त होने वाली इच्छाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य नानाविध साधनों के संग्रह में दिन-रात लगा रहता है। वह उसके लिए उचित अनुचित सब प्रकार के कर्मों में निरत हो जाता है। फिर भी जब उसे सफलता नहीं मिलती, अर्थात् सुखोपलब्धि नहीं होती, तब उससे शिक्षा न लेकर वह सोचता है कि अभी साधन की ही कमी है, इसी कारण सफलता नहीं मिल पा रही है। अब वह अपनी दौड़ और तेज कर देता है। साधनों के अधिकाधिक संग्रह के लोभ में निषिद्ध से निषिद्ध कर्मों में प्रवृत्त होने लगता है। संग्रहवाद की यही होड़ व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व में युद्ध कलह-द्वेषादि

की अग्नि प्रज्ज्वलित करती है। जिसमें समस्त मानव झुलस कर कराह रहा है। वास्तव में मानव का सबसे बड़ा उत्पीड़क शत्रु इस संग्रहवाद के मूल में, कभी न तृप्त होने वाली कामनाओं की पूर्ति में ही सुख है- यह मिथ्या धारणा ही है। अतः 'मानस' के इस सूत्र को स्वीकार करना पड़ेगा-

काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।

हमारी बढ़ती हुई कामनाओं के पीछे हमारा मन होता है। मन को रंजन चाहिए, रस चाहिए। उस रस की खोज में ही वह कामनाओं के पीछे दौड़ता है। हाँ, यदि मन को वास्तविक रस मिल जाए तो वह कामनाओं के पीछे दौड़ना बन्द कर लेगा। इसलिए मन से लड़ना नहीं, मन को मारने के विविध उपाय करना ठीक नहीं, क्योंकि इससे गहरे में वह हठी हो जाता है। मन को वश करने का एक ही उपाय है, उसके सामने वास्तविक रस उपस्थित कर देना। इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के ही परिप्रेक्ष्य में मानों गोस्वामी जी ने मन का रंजन करने के लिए ही रामकथामृत के माधुर्यरस का प्रतिपादन किया है और यह वास्तविकता भी है कि मानव मन को रसाभिभूत करने एवं उसका रंजन करने में रामकथा बेजोड़ है। साथ ही यह कथा, बुद्धिमानों को विश्राम देने और आज के तामस युग के दोषों के क्षय करने में भी पूर्ण सक्षम है-

बुध विश्राम सकल जन रंजनि।
रामकथा कलि कलुष निकंदनि।।
राम कथा कलि कामद गाई।
सुजन सजीवनि मूरि सुहाई।।

अतः जब रामकथा में मानव मन को रसास्वादन मिलने लगता है, तब कामनाओं के पीछे दौड़ने की वृत्ति स्वतः समाप्त होने लगती है। इस प्रकार रामकथामृत के रसास्वादन में तृप्त मन, जीवन के लिए आवश्यक आवश्यकता पर ही संतोष करने लगता है और संतोष की वृत्ति आते ही कभी न तृप्त होने वाली शोकप्रदायिनी कामनाओं का अंत हो जाता है-

काम अछत सुख सपनेहु नाहीं।
बिनु संतोष न काम नसाहीं।।

वास्तव में संतोष जीवन की गति के संतुलन को बनाये रखने वाली एक मजबूत धुरी है। संतोष की वही धुरी जब दुर्बल एवं ढीली पड़ जाती है तब व्यक्ति एवं समाजजीवन अस्त-व्यस्त होकर दुःखमय एवं अशान्तिमय हो जाता है। अतः सुखमय जीवन जीने के लिए संतोष का आश्रय आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। इसे और स्पष्ट कहा जाय तो संतोष ही जीवन है तथा ऐसे जीवन का अभिप्राय है- बहुत ठाट-बाट भड़काऊ दिखाऊ कृत्रिम जीवन नहीं, प्रत्युत् सादा सरल सात्विक एवं सहज जीवन जीने का स्वभाव बन जाना। किन्तु हमारे विचार अवश्य ऊँचे हों, इतने ऊँचे कि उसमें अपना पूरा समाज, राष्ट्र और विश्व समाहित हो जाए। यही हमारे प्राचीन भारत की जीवनशैली- सादा जीवन उच्च विचार- विश्व प्रसिद्ध है। किन्तु पश्चिम की भोगवादी वासनाओं की प्रचण्ड आंधी में बहे जा रहे मनुष्यों को भारत की जीवनशैली समझ में नहीं आती। इसीलिए तो आज खोजने पर भी कोई सुखी मनुष्य नहीं दिखाई देता।

श्री विश्वेश्वर प्रभृति लिङ्गों के स्नानजल की महिमा

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

स्नापयित्वा विधानेन यो लिङ्गस्नपनोदकम् ।
त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहासु विनश्यति।।

'जो मनुष्य शिवलिङ्ग को विधिपूर्वक स्नान कराकर उस स्नान के जल का तीन बार आचमन करते हैं उनके शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकार के पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।'

श्री विश्वेश्वर स्नान के जल का विशेष माहात्म्य है—

जलस्य धारणं मूर्ध्नि विश्वेशस्नानजन्मनः।
एष जालन्धरो बन्धः समस्तसुरदुर्लभः।।

'श्रीविश्वेश्वर के स्नान-जल को मस्तक में धारण करना, यह योगशास्त्र में प्रतिपादित जालन्धर-बन्ध के समान पुण्यजनक है और समस्त देवताओं को दुर्लभ है।'

मीमांसक पद्धति से वचनों की एकवाक्यता
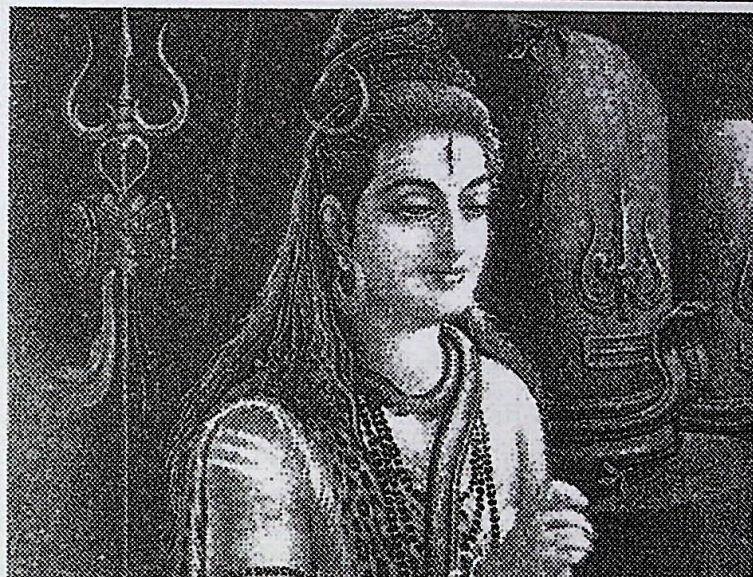
ऊपर उद्धृत किये हुए शास्त्र-वाक्यों से शिव-नैवेद्य की भक्ष्यता तथा शिव-चरणोदक की ग्राह्यता सिद्ध होती है। इस विषय में कुछ शास्त्रवाक्य अन्य प्रकार के भी मिलते हैं, उन वचनों की मीमांसा की जाती है। श्रुति-वाक्यों में परस्पर विरोध प्रतीत होने पर पूर्व-मीमांसा तथा उत्तर-मीमांसा की युक्तियों से उसका निर्णय किया जाता है। धर्मशास्त्र के निबन्धकार कमलाकर भट्ट, वाचस्पति मिश्र, शूलपाणि, रघुनन्दन भट्टाचार्य प्रभृति महानुभावों ने मीमांसा की पद्धति से परस्पर विरुद्ध-से प्रतीत होने वाले शास्त्रवाक्यों का अर्थ निर्णय किया है और उसी निर्णय को सभी शिष्टजन आजतक मानते आये हैं। मीमांसा की पद्धति को न जानने से विरुद्ध वचन देखकर लोगों को भ्रम हो जाता है। इसलिए मीमांसा की पद्धति से यहाँ निर्णय दिखाया जाता है—

सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदश्च नेष्यते।

जिन स्थलों में एकवाक्यता सम्भव है वहाँ वाक्यभेद इष्ट नहीं है; (क्योंकि वाक्यभेद करने से अर्थात् भिन्न वाक्य मानने से वहाँ गौरव होता है।) यही युक्ति प्रकृत में सारी मीमांसा का मूल है। सामान्य वचन का विशेष वाक्य में उपसंहार किया जाता है। अर्थात् विशेष वाक्य के साथ सामान्य

वचन का संकोच किया जाता है– सामान्य वाक्य को विशेष विषय में नियमित किया जाता है– यह मीमांसकों की युक्तियुक्त सिद्धान्तपद्धति है। कुमारिल भट्ट ने यही बात तन्त्रवार्तिक में कही है–

सामान्यविधिरस्पष्टः संह्रियेत विशेषतः।

विधि तथा निषेधों का उपसंहार

यह उपसंहार विधिवाक्य तथा दोनों का माना गया है। 'पुरोडाशं चतुर्धा करोति' इस सामान्य विधि का 'आग्नेयं चतुर्धा करोति' इस विशेष वाक्य में उपसंहार माना गया है। इसी पद्धति के अनुसार–

सहानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात्।
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत्।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत्।।
न म्रियेत समं भर्त्रा ब्राह्मणी शोककर्षिता।
न ब्रह्मगतिमाप्नोति मरणादात्मघातिनी।।

ब्राह्मणी के लिए सहमरण के निषेधक इन सामान्य निषेध-वाक्यों का–

पृथक चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति।।

अर्थात् पृथक् चिता में आरूढ़ होकर ब्राह्मणी को सती नहीं होना चाहिए, इस विशेष निषेध-वाक्य के साथ उपसंहार होता है। यह सिद्धान्त प्राचीन प्रामाणिक मीमांसक शंकर भट्ट ने 'मीमांसाबालप्रकाश' में प्रतिपादित किया है। वेद-भाष्यकार माधवाचार्य ने 'पराशर-भाष्य' में तथा कमलाकर भट्ट ने 'निर्णयसिन्धु' में इन निषेध-वाक्यों की इसी प्रकार एकवाक्यता मानी है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि सामान्य निषेध-वचनों का विशेष वचनों में उपसंहार प्रामाणिक ग्रन्थकारों को सम्मत है। इसी पद्धति से शिवनिर्माल्य के निषेधक सामान्य वचनों के साथ विशेष वचनों की एकवाक्यता करने से इस विषय में कुछ भी संदेह नहीं रह जाता।

शिवनिर्माल्य की अग्राह्यता की व्यवस्था

शिवनिर्माल्य की अग्राह्यता के प्रतिपादक वचन ये हैं–

अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासङ्गात्(स्पर्शात्) सर्वं याति पवित्रताम्।।
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
मह्यं निवेद्य सकलं कूपं एव विनिःक्षिपेत्।।
विसर्जितस्य देवस्य गन्धपुष्पनिवेदनम्।
निर्माल्यं तद्विजानीयाद् वर्ज्यं वस्त्रविभूषणम्।।
अर्पयित्वा तु ते भूयश्चण्डेशाय निवेदयेत्।।
धराहिरण्यगोरत्नताम्ररौप्यांशुकादिकान्।
विहाय शेषं निर्माल्यं चण्डेशाय निवेदयेत्।।

इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि भूमि, वस्त्र, भूषण, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र आदि छोड़कर श्रीशिव के चढ़े हुए पत्र, पुष्प, फल, जल–ये सब निर्माल्य अग्राह्य हैं, इन निर्माल्यों को चण्डेश्वर को निवेदित करना चाहिए। यद्यपि ये निर्माल्य स्वयं अग्राह्य हैं तथापि शालिग्राम-शिला-स्पर्श से पवित्र - ग्रहण के योग्य हो जाता है।

व्यासजी के द्वारा संतानोत्पादन का प्रसङ्ग

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

परमसिद्धि प्राप्त करके शुकदेव जी के पधार जाने पर देवशिरोमणि व्यास जी ने फिर क्या किया, इसे विस्तारपूर्वक हमें बताने की कृपा कीजिए।

असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु प्रभृति अनेकों शिष्य व्यासजी के पास रहकर वेदाभ्यास करते थे। वे सभी पहले ही आज्ञा लेकर पृथ्वी पर धर्मप्रचारार्थ चले गये थे तथा पुत्र शुकदेव जी का अन्तरिक्ष में निवास हो गया– यह सब देखकर व्यासजी के मन पर शोक की घटा घिर आयी। उन्होंने वहाँ से चलने का विचार कर लिया। इतने में उन्हें निषादकन्या, अपनी पुण्यवती माता सत्यवती याद आ गयी। उन्होंने उन्हें गङ्गा के तट पर छोड़ दिया था। माता सत्यवती की दयनीय दशा याद आने पर वे महातेजस्वी मुनिवर व्यासजी उस पर्वतशिखर को छोड़कर अपनी जन्मभूमि पर आ गये। आकर निषादों से पूछा–'पुण्यमयी माता कहाँ गईं? उन सबने उत्तर दिया– 'वह कन्या राजा शांतनु को सौंप दी गयी है।' इसके बाद दाशराज ने प्रसन्नतापूर्वक व्यासजी का आतिथ्य-सत्कार किया।

फिर तो व्यास जी सरस्वती नदी के सुरम्य तटपर अपना आश्रम बनाकर वहीं रहने लगे। तपस्याआरम्भ [illegible] गयी। राजा शांतनु बड़े प्रतापी नरेश थे। उन्होंने सत्यवती के गर्भ से दो पुत्रों को
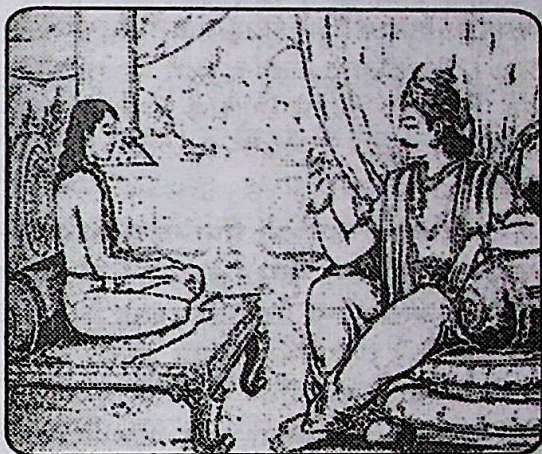
जन्म दिया। वनवासी जीवन व्यतीत करते हुए भी व्यासजी उन दोनों पुत्रों को भाई मानकर बड़े सुखी थे। महाराज शांतनु के प्रथम पुत्र का नाम चित्राङ्गद हुआ। शत्रुदमन चित्राङ्गद अनुपम सुन्दर एवं सम्पूर्ण शुभ लक्षणों से सम्पन्न थे। दूसरे पुत्र का नाम विचित्रवीर्य था। उनमें भी सभी गुण विद्यमान थे। उन्हें देखकर पिता को अपार हर्ष होता था। राजा शांतनु के सबसे बड़े पुत्र महान् प्रतापी भीष्म थे। उनमें असीम शक्ति थी। सत्यवती कुमार चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य भी भीष्मजी के समान ही बलशाली हुए। सर्वलक्षणसम्पन्न तीनों पुत्रों को देखकर महामना शांतनु अपने को देवताओं से भी अजेय मानते थे। कुछ समय के पश्चात् राजा शांतनु का स्वर्गवास हो गया। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र को छोड़ देता है, वैसे ही उन धर्मात्मा नरेश ने अपने जीर्ण शरीर का

परित्याग कर दिया शांतनु के स्वर्ग सिंधारने पर उनके लिए और्ध्वदैहिक क्रियाएँ सविधि सम्पन्न की गयीं। अनेकों प्रकार के दान किये गये। इसके बाद पराक्रमी भीष्म जी ने स्वयं राज्य को स्वीकार न करके चित्राङ्गद को राजा बनाया। सत्यवतीकुमार चित्राङ्गद बड़े प्रतापी एवं पुण्यात्मा पुरुष थे। उन बलाभिमानी वीर ने शत्रुओं को परास्त कर दिया था।

एक समय की बात है– महाराज चित्राङ्गद विशालवाहिनी साथ लेकर वन में गये। चित्राङ्गद अभी मार्ग में ही थे, इसी बीच चित्राङ्गद नामक गन्धर्व ने उन्हें देखा और एक उत्तम रथ पर उन नरेश के सामने ही वह भूमि पर उतर आया। राजा चित्राङ्गद और वह चित्राङ्गद नामधारी गन्धर्व दोनों एक समान पराक्रमी थे। तदनन्तर वे दोनों कुरुक्षेत्र नामक प्रसिद्ध स्थान में भयंकर युद्ध करने लगे। तीन वर्ष तक लड़ाई चलती रही। अन्त में राजा चित्राङ्गद उस गन्धर्व के हाथ युद्ध में काम आकर स्वर्ग चले गये। समाचार पाकर भीष्मजी ने उनके श्राद्धादि कर्म किये।

तदनन्तर उन्होंने विचित्रवीर्य को राजगद्दी सौंप दी। पश्चात् मन्त्रियों एवं महानुभाव गुरुओं ने सत्यवती को समझाया। सामने ही दूसरे पुत्रका राज्याभिषेक भी हुआ। इससे माता शोकाकुल होने पर भी संतुष्ट हो गयी।

अब सत्यवतीकुमार विचित्रवीर्य युवा हो गये। भीष्मजी को अपने छोटे भाई के विवाह की चिन्ता लग गयी। काशिराज के तीन कन्याएँ थी। सभी में शुभ लक्षण विद्यमान थे। राजा ने स्वयंवर की पद्धति से विवाह करने के लिए कन्याओं को उपस्थित किया था। शर्त थी, कन्याएँ इच्छानुसार वर चुन लें। हजारों नरेश और राजकुमार बुलाये गये थे। लब्धप्रतिष्ठ राजाओं की मण्डली उपस्थित थी। महान् तेजस्वी भीष्म जी एक रथपर बैठकर उस स्वयंवर में पधारे और सभी राजाओं को परास्त करके उन्होंने तीनों कन्याएँ बलपूर्वक छीन लीं। महारथी भीष्मजी तेजस्वी पुरुष थे। अपने बाहुबल से सम्पूर्ण नरेशों को जीतने के पश्चात् उन कन्याओं को लेकर वे हस्तिनापुर लौट आये। भीष्मजी ने उन सुन्दरी कन्याओं के प्रति ऐसी धारणा बना ली थी, मानो ये माता, बहन अथवा पुत्री हों, उन्हें लाकर उन्होंने तुरंत सत्यवती को सौंप दिया और ज्योतिष एवं वेद के पारंगत विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे शुभ मुहूर्त बताने की प्रार्थना की। जब विवाह का सारा सामान एकत्रित कर लिया और अपने छोटे भाई धर्मात्मा विचित्रवीर्य का उन कन्याओं के साथ विवाह करने लगे तो तीनों में जो अत्यन्त सुन्दरी थी, उस बड़ी कन्या ने सलज्ज भीष्म जी से कहा– 'धर्मज्ञ! आप कुरुवंश के एक प्रतिष्ठित पुरुष हैं। आपने अपने वंश को उज्ज्वल कर दिया है। गङ्गानन्दन! मैं तो मन–ही–मन राजा शाल्व को स्वयंवर में वर चुकी हूँ। वह नरेश मेरे प्रेम में विह्वल हो गया था। अतः उसने भी चित्त में मुझे वर लिया था। परंतप! अब इस कुल की प्रथा के अनुसार जो उचित हो, करने की कृपा कीजिये! भीष्म जी! आप धर्मात्माओं में भी अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। यद्यपि शाल्व ने पहले मुझे वर लिया, फिर भी आप शक्तिशाली पुरुष हैं; अतः जैसी इच्छा हो, कर सकते हैं।

.......क्रमशः

वासुदेव सर्वम्

गतांक से आगे ......

—स्वामी रामसुखदास जी

यद्यपि इस अध्याय के प्रारम्भ में पहले दो श्लोकों में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का सूत्ररूप से वर्णन हुआ है, जिसे भगवान् ने 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम'- भी कहा है; तथापि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विभाग का स्पष्टरूप से सविस्तार स्पष्ट विवेचन (विकारसहित क्षेत्र और निर्विकार क्षेत्रज्ञ के स्वरूपगत रहस्य का प्रभावसहित विवेचन) इस तीसरे श्लोक से आरम्भ होकर चौदहवें अध्याय के २०वें श्लोक तक किया गया है। इसलिए यहाँ भगवान् पुनः सुनने की आज्ञा देते हैं। तात्पर्य यह है कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विभाग को भी सावधान होकर सुनो।
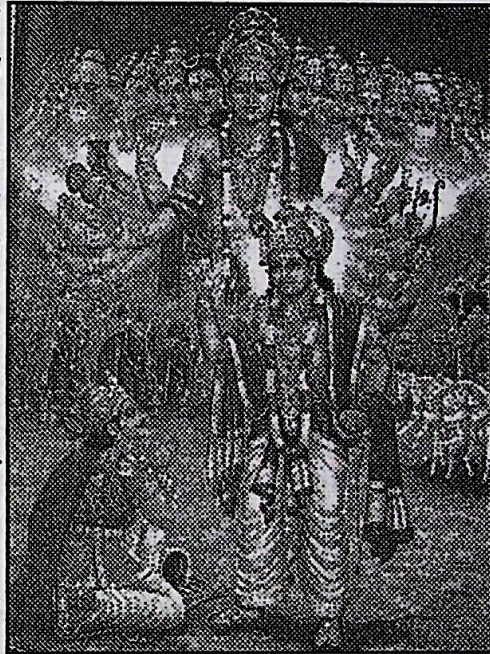
जैसे अपने स्वरूप को परमात्मा से अलग मानना अज्ञान है, वैसे ही समष्टि प्रकृति के ही अङ्ग अपने शरीर को समष्टि से अलग मानना भी अज्ञान है। इस प्रकरण में भगवान शरीर की समस्त संसार के साथ और अपने (जीव के) वास्तविक स्वरूप परमात्मा के साथ अभिन्नता को विस्तृतरूप में ध्यानपूर्वक सुनने की आज्ञा देते हैं। यहाँ पर भगवान् का यह आशय है कि परमार्थ-मार्गपर चलने वाले सभी पथिकों (ज्ञानमार्गी, भक्तिमार्गी, योगमार्गी आदि) को इस क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विभाग को तत्परता से एवं सावधानीपूर्वक समझना चाहिए; क्योंकि यह उन सभी के लिए उपयोगी है।

शङ्का- यहाँ इस श्लोक में भगवान क्षेत्र के विषय में चार बातें- स्वरूप, स्वभाव, विकार और जिससे जो पैदा हुआ एवं क्षेत्रज्ञ के विषय में केवल दो बातें- स्वरूप और प्रभाव ही सुनने की आज्ञा देते हैं। अतः ऐसी शंङ्का हो सकती है कि क्षेत्र का प्रभाव भी क्यों नहीं कहा गया और साथ ही क्षेत्रज्ञ के सम्बन्ध में स्वरूप के अतिरिक्त उसके भी स्वभाव, विकार और जिससे जो पैदा हुआ, इन विषयों पर प्रकाश क्यों नहीं डाला गया?

समाधान- एक क्षण भी एक रूप में स्थिर न रहने वाले क्षेत्र का प्रभाव हो ही क्या सकता है? प्रकृतिस्थ (संसारी) पुरुष के अन्तःकरण में धनादि जड़ पदार्थों का महत्व रहता है, इसीलिए संसार में क्षेत्र का (धनादि जड़ पदार्थों का) प्रभाव दिखता है। वास्तव में स्वतंत्र रूप से क्षेत्र का कुछ भी प्रभाव नहीं है। अतः प्रतिक्षण परिवर्तनशील क्षेत्र का कुछ भी प्रभाव न होने के कारण उसके प्रभाव का कोई वर्णन नहीं किया गया।

क्षेत्रज्ञ का स्वरूप उत्पत्ति-विनाशरहित है, इसलिए उसका स्वभाव भी उत्पत्ति-विनाशरहित है। अतः श्रीभगवान् ने उसके स्वभाव का पृथक् से वर्णन न कर स्वरूप के अन्तर्गत ही कर दिया। क्षेत्र के साथ अपना सम्बन्ध मान लेने से ही क्षेत्रज्ञ में इच्छा-द्वेषादि विकारों की प्रतीति होती है; स्वरूपतः क्षेत्रज्ञ निर्विकार ही है। अतः वस्तुतः निर्विकार क्षेत्रज्ञ के विकारों का वर्णन सम्भव ही नहीं। क्षेत्रज्ञ अद्वितीय, अनादि और नित्य है। अतः इसके विषय में कौन किससे उत्पन्न हुआ, यह प्रश्न ही नहीं बनता।

'क्षेत्रज्ञ' शब्द से कहीं क्षेत्र के साथ सम्बन्ध मानने वाले का वर्णन हुआ है और कहीं क्षेत्र के साथ सम्बन्ध न मानने वाले शुद्ध स्वरूप का वर्णन किया गया है। अतः साधक को 'क्षेत्रज्ञ' शब्द का अर्थ प्रसङ्ग के अनुसार लेना चाहिए।

सम्बन्ध– अगले श्लोक में भगवान् कहते हैं कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विषय में जो मैं संक्षेप से कह रहा हूँ, वही यथार्थ है और उसी विषय को (विस्तार से देखना चाहें तो) वेद, शास्त्र, ब्रह्मसूत्र और महापुरुष भी विस्तार से कहते हैं–

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।४।।

भावार्थ– वेद के अनेक मंत्रों द्वारा अलग-अलग जिनके (क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के) तत्व का विस्तार से वर्णन हुआ है तथा ऋषियों ने भी जिनका बहुत प्रकार से वर्णन किया है, वही क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का तत्त्व युक्तियों द्वारा निश्चित किये हुए ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है।

भगवान् का आशय मानो यह है कि क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का जो संक्षिप्त वर्णन मैं कर रहा हूँ, उसे यदि कोई साधक विस्तार से देखना चाहे, तो उसे उपर्युक्त स्थलों (वेदादि) में देखना चाहिए।

भगवद्वाणी में उपर्युक्त प्रमाणों के आ जाने से यह सिद्ध हो जाता है कि वेद, शास्त्र और महापुरुषों के द्वारा क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विषय में विस्तारपूर्वक किया हुआ विवेचन भी यथार्थ है, अर्थात् ये (वेद-शास्त्रादि) यथार्थ तत्व का ही निरूपण करते हैं।

पद-व्याख्या– विविधैः छन्दोभिः पृथक् (गीतम्)– विविध वैदिक मंत्रों द्वारा विभागपूर्वक कहा गया है। यहाँ 'विविधैः' विशेषण सहित 'छन्दोभिः' पद ऋक् , यजुः, साम और अथर्व– इन चारों वेदों के 'संहिता' और 'ब्राह्मण' भागों के मन्त्रों का वाचक है। इन्हीं के अन्तर्गत समस्त उपनिषद् और भिन्न-भिन्न शाखाओं को भी समझ लेना चाहिए।

च – तथा। **ऋषिभिः बहुधा गीतम्**– ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से समझाया गया है। मंत्रों के द्रष्टा एवं शास्त्र और स्मृतियों के रचयिता ऋषिगणों के लिए यहाँ 'ऋषिभिः' पद आया है। इन ऋषियों ने अपनी-अपनी स्मृतियों और ग्रंथों में जड़-चेतन, सत्-असत् शरीर-शरीरी, देह-देही और नित्य-अनित्य आदि शब्दों से क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के तत्त्व को बहुत प्रकार से वर्णन करके स्पष्ट समझाया है।

च – और

'**विनिश्चितैः हेतुमद्भिः ब्रह्मसूत्रपदैः एव**– युक्तियुक्त एवं अच्छी प्रकार निश्चय किये हुए ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के तत्त्व का निरूपण किया गया है।

सम्बन्ध– तीसरे श्लोक में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के विषय में जिन छः बातों को संक्षेप से सुनने की आज्ञा दी गयी थी, उनमें से क्षेत्र की दो बातों का अर्थात् उसके स्वरूप और विकारों का वर्णन आगे के दो श्लोकों में किया जा रहा है–

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।।५।।

भावार्थ– सूक्ष्म पञ्चमहाभूत– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, जिन्हें सांख्ययोग आदि में पञ्चतन्मात्रा भी कहते हैं, समष्टि अहंकार– जिसके पुराणों में सात्विक, राजस और तामस– तीन भेद किये गये हैं; समष्टिबुद्धि– जिसे महत्तत्त्व कहते हैं और मूल प्रकृति, पाँच कर्मेन्द्रियाँ– वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा), एक मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध)इस प्रकार इन चौबीस तत्वों के समुदाय का नाम 'क्षेत्र' है

महाभूतानि– सूक्ष्म पञ्चमहाभूत।

वेदान्त-ग्रन्थों में इन्हीं को 'अपञ्चीकृत-पञ्चमहाभूत' कहते हैं। इन्द्रियों के विषय (शब्दादि) के कारण होने से ये पञ्चमहाभूत 'प्रकृति' हैं एवं 'अहंकार' तत्त्व के कार्य होने से 'विकृति' हैं। तात्पर्य यह है कि ये पञ्चमहाभूत 'प्रकृतिविकृति' हैं। सातवें अध्याय के चौथे श्लोक में– '**भूमिः, आपः, अनलः, वायुः और खम्**'- के नामों से इन्हीं पञ्चमहाभूतों का वर्णन हुआ है।

अहंकारः- समष्टि अहंकार।

व्यक्तिविशेष में (भूल से शरीर को अपना स्वरूप मानकर) 'शरीर मैं हूँ' ऐसी अहं की स्फूर्ति होने को 'व्यष्टिअहंकार' कहते हैं। यह व्यष्टिअहंकार अपना माना हुआ है। अतः यह अपवित्र और त्याज्य है। इस माने हुए अहंकार के कारण ही जन्म-मरण होता है, परंतु इसे न मानने से इसका सर्वथा अभाव हो जाता है

यद्यपि यह 'व्यक्तिगत (व्यष्टि) अहंकार' भी अहंकार के नाम से कहा जाता है, किंतु यहाँ पर यह पद समष्टि अहंकार के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसे वायु, तेज, जल और पृथ्वी– इन तत्त्वों का आकाश कारण भी है एवं उनमें व्याप्त भी है, वैसे ही अहंकार समष्टि संसार की उत्पत्ति का कारण भी है और सम्पूर्ण संसार में व्याप्त भी है। सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति का क़ारण एवं सम्पूर्ण संसार में व्याप्त होने से सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों में व्यापक सामान्य अहंकार एवं सम्पूर्ण भौतिक पदार्थ मिलकर 'समष्टिअहंकार' कहलाता है। व्यष्टिअहंकार इस समष्टिअहंकार का ही क्षुद्र अंश है।

समष्टि अहंकार की द्रव्य-शक्ति से पाँच महाभूत, ज्ञान-शक्ति से मन और क्रियाशक्ति से दसों इन्द्रियों की उत्पति् कही गयी है, इसलिए यह 'प्रकृति' है; यह समष्टि-बुद्धि का कार्य होने से 'विकृति' भी है। तात्पर्य यह है कि अहंकार 'प्रकृति-विकृति' है।

सातवें अध्याय के चौथे श्लोक में 'अहंकारः' पद इसी समष्टिअहंकार के भाव से ही आया है।

तीसरे अध्याय के २७वें श्लोक में, सोलहवें अध्याय के १८वें श्लोक में तथा अठारहवें अध्याय के ५३वें और ५९वें श्लोकों में आया हुआ 'अहंकार' पद एवं अठारहवें अध्याय के १७वें श्लोक में आया हुआ 'अहंकृतभाव' पद और अठारहवें अध्याय के ५८वें श्लोक में आया हुआ 'अहंकारात्' पद व्यष्टि अहंकार के वाचक हैं।

दूसरे अध्याय के ७१वें एवं बारहवें अध्याय के १३वें श्लोक में आया हुआ 'निरहंकारः' तथा इसी अध्याय के आठवें श्लोक में आया हुआ 'अनहंकारः' और अठारहवें अध्याय के २६वें श्लोक में आया हुआ 'अनहंवादी' पद माने हुए बन्धनकारक अहंकार के सर्वथा अभाव के ही द्योतक हैं, सामान्य अहंकार के नहीं। जिस अहंकार से जीवन्मुक्त महापुरुष की जीवन-निर्वाहसम्बन्धी क्रियाएँ होती हैं, वह निर्दोष सामान्य अहंकार है, जो अपने सम्पूर्ण कार्य-संसार में सामान्य रूप से व्यापक है।

.......क्रमशः

होने दो सागर का मंथन

होने दो सागर का मंथन
विष निकलेगा-
यह भय क्यों हो
क्यों हो क्रंदन-
पाना तुमको
यदि अमृत है
मंथन तो करना ही होगा
छोड़ रहे क्यों मध्य मार्ग में
यात्रा को पूरा करना है
थकित रहे तन
तो क्या डर है
मन तो थका नहीं करता है
उठो करो तुम शक्ति प्रदर्शन
होने दो सागर का मंथन

जीवन का जो रिक्त भाग है,
उसको ले उद्वेलित तुम क्यों
बढ़े चलो तुम, बढ़े चलो तुम
करना है विराट अभिनन्दन
होने दो तुम सागरमंथन
देखो तुम मत घबराना
मृत्यु नाम नवजीवन का है
लक्ष्य हेतु तुम गले लगाना
करो महाशौर्य का वंदन
होने दो यह सागरमंथन
मंथन को देखो, मत रोको
वक्षस्थल, सागर का चीरो
अमृतपुत्र बनो तुम वीरो
लक्ष्मी से होगा तव वंदन
होने दो यह सागर मंथन।

— नरेन्द्र मोहन

श्री गवरजों ए भँगिया घुटाय दयो जी

गवरजा ए भँगिया घुटाय दयो जी...
आन्नदमयी भँगिया घुटाय दयो जी....
ज्या से भव बन्द छूटे, भक्त आनन्द लूटे...
नवधा भक्ति को रंग मिलाय दयो जी...
प्रेममयी भँगिया घुटाय दयो जी...
.... भँगिया घुटाय दयो जी

पिस्ता–बदाम–मेवा–मिसरी इलाइची,
सवा–सवा मन दीजो डाल...
घणे–घणे चाव से घोटो भवानी,
थारै हाथा रची मेहन्दी लाल
यामे रामरस घुलाय दयो जी....
............भँगिया घुटाय दयो जी
प्रेममय भँगिया घुटाय दयो जी

विणिया धतूरा जामे कस्तूरी डाल के,
छानी है गवरजा अपने हाथ.....
भर–भर प्याला देवे गवरजा
पीओ प्रभु भोले नाथ...
जरा सत्संग को रस बरसाय दयो जी...
भँगिया घुटाय दयो जी...
आन्नदमयी भँगिया घुटाय दयो जी।

वेद शास्त्र की चर्चा ही महाज्ञानी बना देती है

—बालव्यास पं. श्रीकांतजी शर्मा

प्रेम जीवन का श्रृंगार है। प्रेम की चर्चा प्रेमपूर्ण जीवन की ओर संकेत कर सकती है किन्तु प्रेम की प्रतिष्ठा तो वह दुर्लभ अवस्था है जो कम लोगों को नसीब होती है। जो चर्चा को प्रेम समझते हैं अथवा कुछ परोपकार के से कार्य को प्रेम का नाम देते हैं वे प्रेम तत्व से अनभिज्ञ हैं।

प्रेम ईश्वरीय प्रकाश है। प्रेम ही ईश्वर है। ईश्वर से एक होना ही प्रेमपूर्ण होना है। किन्तु ईश्वरतत्त्व दीखता नहीं, उसके कार्य दीखते हैं। कार्यों के आकर्षण में खोया प्राणी कर्ता के दर्शन नहीं कर पाता। कर्त्ता अदृश्य है। जो दृश्यजगत को सत्य माने उसे कर्त्ता के दर्शन नहीं कराये जा सकते। दीखने वाला, कार्य करने वाला व्यक्ति जब काल के गाल में समा जाता है तब कुछ देर के लिए बोध होता है कि कोई एक ऐसी शक्ति है जो सब कुछ में गति देती हुई छुपी है किन्तु उड़ती सी जिज्ञासा में बोध होता नहीं।

विद्या-बुद्धि ने मनुष्य का अहित किया है ऐसा कहना उचित मालूम नहीं पड़ता किन्तु परमात्म-विद्या का अर्जन न हो तो जागतिक विद्या व बुद्धि से मानव का भला होता नहीं। तब जो कुछ योग्यता स्वयं में दीखती है उसका सूक्ष्म अहंकार रहता ही है क्योंकि प्रेम तत्त्व के जागरण के पूर्व जीवन में अहंकार को किसी न किसी रूप में प्रश्रय मिल ही जाता है। कुछ भी गलत देख कर तब उसे सुधारने के निमित्त भावना जाग्रत होती है। यह भाव तब नहीं रहता कि सबका सुधार करने वाला ईश्वर है और उसे महत्व देने वाले का जीवन ही सुधरता है। प्राणी जहाँ सुधार के मार्ग पर बढ़ता है वहाँ सुधार का भ्रम है और भ्रम में रमण तो कष्ट ही देता है।

दो दिन का मेहमान है प्राणी इस जगत में। क्या उसे यहाँ सदैव रहना है जो वह उसके सुधार के लिए परेशान है? दो दिन के लिए कहीं जाने पर शान्तिप्रिय मनुष्य उसके सुधार के लिए परेशान है? दो दिन के लिए कहीं जाने पर शान्ति के लिए कहीं जाकर आनन्द में बाधा देने वाले विचारों को प्रश्रय देना नासमझी है। मनुष्य को तो अपनी भावना पर ध्यान देना है कि कहीं ऐसे भावों को प्रश्रय न मिले जिन्हें प्रश्रय देने पर दिल की दुनिया उजड़ जाये। जहाँ तक संसार के सुधार का प्रश्न है वह तो ईश्वर के अधीन है, ईश्वर की मर्जी पर निर्भर है। अपने निर्मित संसार की चिन्ता वह करे जिसने उसका निर्माण किया है। मनुष्य को तो यदि रस पाना है तो वह ईश्वर से एक होने की भावना रखे। फिर यदि ईश्वर ऐसे मनुष्य का उपयोग अपने कार्य के निमित्त करे तो यह उसकी मरजी है।

जहाँ दर्शन है वहाँ प्रदर्शन नहीं। यों भीतर की क्या अवस्था है इसे व्यक्ति चाहकर भी अन्य से छिपा नहीं सकता क्योंकि आँखे ऐसा छिद्र हैं जो सब कुछ खोलकर रख देती हैं। ज्ञान जानकारी का दूसरा नाम है और वास्तविक जानकारी अवस्था पाने पर होती है। क्रोध न करो यह जानकारी सबको है और सभी यह जानते हैं कि क्रोध में मति भ्रष्ट हो जाती है, सही सोचने-विचारने की क्षमता नहीं रह जाती। किन्तु जब तक प्रेम जागृत होता नहीं अर्थात् हृदय परिवर्तित नहीं होता तब तक क्रोध प्रश्रय पाता ही है। हृदय यदि कष्ट में दुःखी है, चिन्ता बनी हुई है ऐसी अवस्था में उच्च से उच्च अवस्था की दिमागी जानकारी कुछ लाभ नहीं देती। लाभ के लिए प्रथम उस राह को अपनाना पड़ता है जिसे अपनाने से मानसिक राहत मिले।

जानकारी बौद्धिक हो तो भी एक हल्की सी राहत मिलती है किन्तु तत्पश्चात् उस विचार को जीवन में उतारने के लिए सच्ची भावना हुए बिना काम पटता नहीं। साधु-संत बहुत महान हैं, ऊंचे हैं ऐसा मानना उनसे दूर होना है। जो संत हैं वे तो सब के हैं किन्तु उनसे जुड़ाव बढ़ाने के लिए सब तैयार इसलिए नहीं हो पाते क्योंकि ऐसे में 'मैं' का विसर्जन जरूरी है। मैं और मेरा में सुख पाने वाला जिसने मैं-मेरे का निर्माण किया है उसकी ओर उन्मुख नहीं होता, परिणाम उस सृजनकर्त्ता के कथा-श्रवण व गुणानुवाद में ही रह जाता है, हृदय का दान उसे नहीं कर पाता अतः सब कुछ करते व जानते हुए भी हृदय से विकल बना रहता है। •

उल्लास का पर्व होली

—डा. राम सुधार सिंह

होली लोक का त्यौहार है, आमजन का उत्सव है, बाहर-भीतर एक कर देने का उल्लास है और हमारी सांस्कृतिक परम्परा को रंग-बिरंगा कर देने का महोत्सव है। जो कुछ भी लोक-संस्कृति के साथ है उसे होली ने अपने में समेट लिया है। रामकृष्ण उत्तरी भारत के अवतारी पुरुष हैं, इसिलिए यहां की लोक-संस्कृति में समाये हुए हैं। इसीलिए लोकगायक के साथ सभी झूमकर गाते हैं—
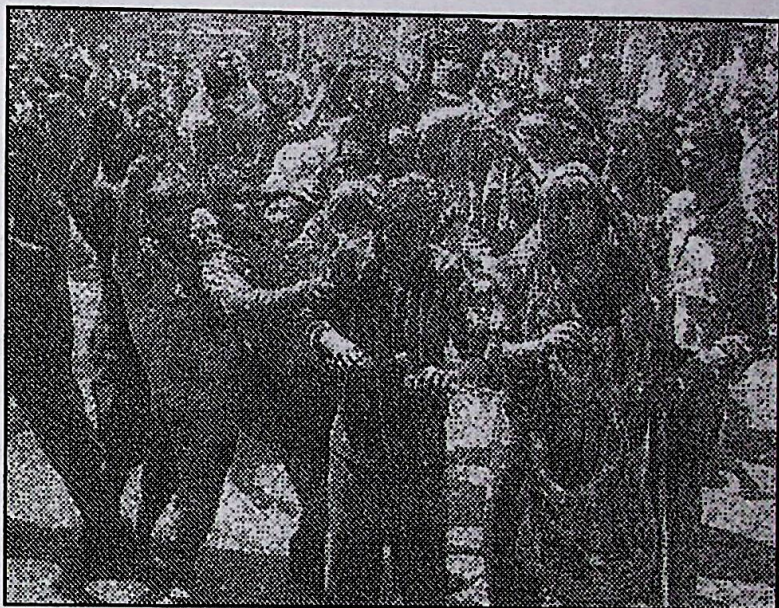
होरी खेलैं रघुवीरा अवध में
होरी खेलैं रघुबीरा।
केकरा हाथ कनक पिचकारी,
केकरा हाथे अबीरा।
राम के हाथ कनक पिचकारी
सीता के हाथ अबीरा
होरी खेलैं रघुबीरा अवध में
होरी खेलैं रघुबीरा ।।

ब्रज की होली तो जगतप्रसिद्ध है जहाँ महीनों आनन्द और मस्ती का रस बरसता रहता है। होली के गीतों में कहीं राधा और कृष्ण को होली खेलते देखा जाता है तो कहीं अड़भंगी शिव भी गौरा-पार्वती के साथ होली खेलते हैं। होली गीत परम्परागत तो है ही इसमें राष्ट्रीय चेतना के स्वर भी निकलते हैं। सन् १८५७ के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम-सेनानी वीर कुँवर सिंह की वीरता का वर्णन होली गीत में इस प्रकार किया गया है—

भोजपुर अइसे होली मचाई।
गोला बारूद के रंग बनाए, तोपन के पिचकारी।
बीच भोजपुर में फाग मचल बा।
खेलें कुँवर सिंह भाई।

लेकिन होली का रूप आज बदला है, गाँव में भी शहर में भी। अब न तो वे महफिलें हैं, न

हास-परिहास की सात्विकता। भौतिकतावादी दृष्टि ने हमें बाहर से कुछ और, भीतर से कुछ और बना दिया है। ऐसे में होली अपने को कितना बचायेगी क्योंकि यह तो सारी दीवारों को तोड़कर मिलाने का पर्व है।

भारतीय त्यौहारों में होली का अपना विशिष्ट स्थान है। जब प्रकृति में बसन्त का आगमन हो जाता है, पूरी धरती धनधान्य से सम्पन्न होकर पूर्ण-यौवना बन जातीहै, हरियाली की धानी चूनर पहन, पीली सरसों का आँचल लहराते जब प्रकृति सुन्दरी मचलने लगती है तो उसे देखकर मानव का हृदय उन्माद और उल्लास से भर जाता है। एक ओर प्रकृति शीतरूपी दानव से मुक्त होकर खिलखिलाने लगती है तो दूसरी ओर मानव भी ठिठुरन-गलन से उबर कर एक नई ऊर्जा से भर जाता है और तब हमारा मन अबीर और गुलाल में रंग का अठखेलियाँ करने लगता है।

होली के सम्बन्ध में प्राचीन पौराणिक कथानक है कि हिरण्यकश्यपु ने अपने पुत्र प्रह्लाद को मारने के लिए अपनी बहन होलिका का सहारा लिया। होलिका को आग नहीं जला पाती थी। होलिका प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठ जाती है और उसके चारो ओर आग लगा दी जाती है। विष्णु का भक्त होने के कारण प्रह्लाद बच जाता है और होलिका उस आग में जलकर भस्म हो जाती है। इसी कारण प्रतिवर्ष यह पर्व मनाया जाता है तथा दूसरे दिन अपनी प्रसन्नता की अभिव्यक्ति रंगों से की जाती है। इस पौराणिक कथा के पीछे भी सुन्दर प्रतीकार्थ छिपा हुआ है। हिरण्यकश्यपु हमारा मन है कि जो हिरण्य अर्थात् स्वर्ण का लोभी है और होलिका उसी जड़ता, कुण्ठा जैसी दानवी प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें समाप्त करके ही हम हर्ष, उल्लास और प्रसन्नता से भर सकते हैं।

होली का त्यौहार हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से मनाया जाता रहा है। समय एवं परिस्थिति के अनुसार इसके स्वरूप में भले ही परिवर्तन हुआ किन्तु इसके पीछे मूल भावना वही रंग और उल्लास की है। प्राचीन काल में यह उत्सव मदनोत्सव के रूप में मनाया जाता था। राज्य की ओर से उत्सव की व्यवस्था की जाती थी और सभी वर्ग के लोग उसमें भाग लेते थे। मध्यकालीन भारत में लगातार विदेशी आक्रमणों एवं मुस्लिम साम्राज्य के स्थापित हो जाने के पश्चात् इसके स्वरूप में परिवर्तन अवश्य आया किन्तु उस समय के बादशाह और सुल्तान भी इस उत्सव में उल्लास के साथ भाग लेते थे, इसके प्रमाण मिलते हैं।

धीरे-धीरे इस उत्सव की मूलभावना कमजोर होती गई और उसके स्थान पर फूहड़ता, गाली-गलौज तथा अभद्रता मुख्य होती गई। यद्यपि 'कबीर' और 'जोगीड़ा' के रूप में इसका प्रचलन पहले भी था किन्तु उनमें भावना सात्विकता की थी। आज होली के नाम पर बहुत से लोग अपने मन की भंड़ास निकालते हैं। कभी-कभी बदला लेने की भावना से अनेक दुष्कृत्य भी लोगों के द्वारा किये जाते हैं। रास्ते जाते हुए किसी के ऊपर कीचड़ फेंकना, वार्निश तथा अन्य रासायनिक पदार्थ चेहरे पर पोतना, गरीब एवं असहाय लोगों को तंग करना, जबरदस्ती चंदा वसूलना, हरे पेड़ों को काटकर होलिका में डालना, सड़क पर जहाँ-

तहाँ होलिका लगाकर मार्ग अवरुद्ध करना अथवा जाम की स्थिति पैदा करना एवं नशे में गाड़ी चलाते हुए दुर्घटनाओं को आमंत्रित करना आदि अनेक ऐसी विकृतियाँ हैं जो इस प्रेम और उल्लास के पर्व को कलंकित करती हैं। आज हमारे सामने पर्यावरणप्रदूषण भी दानव का रूप ले चुका है। वनों के विनाश तथा अनेक प्रकार के असन्तुलन के कारण मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में अधिक से अधिक वृक्षारोपण एवं वनों का संरक्षण आवश्यक है। परम्परा और धार्मिक उन्माद की आड़ में हरे वृक्षों को काटकर होलिका में जला देना स्वयं अपने विनाश को आमंत्रित करना है। सच्चे अर्थों में यह उत्सव हमारे उल्लास और आह्लाद का प्रतीक है। भारतीय परम्परा में यहीं से वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। बीते साल के सारे कूड़े-कचरे अर्थात् मन की मलीनता, उसकी विकृतियों को जलाकर दूसरे दिन बाहर और भीतर हर तरफ से प्रेम, सौहार्द्र, भाई-चारे की भावना तथा अपनेपन में भर जाएँ, छोटे-बड़े, अपने-पराये सभी को हृदय से लगाकर प्रेम से सराबोर कर दें तथा उमंग और मस्ती से भरकर नये वर्ष का स्वागत करें, पिछली बीत चुकी सारी कठिनाइयों को भुलाकर एक नये जोश और आशा से, मुक्त होकर हम आने वाले दिनों को प्रकाश और ऊर्जा से भर दें-यही इस पर्व का महान संदेश है और इसी रूप में इसे मनाना भी चाहिए। आज देश को धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्रीयता, भाषावाद, अलगाववाद जैसी अनेक समस्याएँ दानवी रूप में घेरे हुए हैं। भ्रष्टाचार, हिंसा, अनाचार को जैसे वरदान मिला हुआ है कि ये कभी जल नहीं पायेंगे। ऐसी स्थिति में हर किसी को प्रह्लाद बनकर उदात्त जीवनमूल्यों का जागृत करना पड़ेगा तभी वरदान पाई इस होलिका का विनाश सम्भव हो सकेगा और एक ऐसे रंग-बिरंगे भारत का निर्माण हो सकेगा जहाँ सभी समान होंगे। आपस में भाईचारा बढ़ेगा और सभी धनधान्य से सम्पन्न होंगे तभी भारत माता अपनी रंग-बिरंगी चूनर पहनकर आनन्द और उल्लास से झूम उठेगी। ऐसे सपनों का भारत बनाने में बच्चों एवं युवकों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

आइये हम भी होली के वास्तविक मर्म तथा सन्देश को समझकर इसे एक यादगार पर्व के रूप में मनावें। आपस में द्वेष और कटुता की होलिका जलाकर प्रेम-सौहार्द्र, भाईचारे के रंग से सभी को सराबोर कर दें और समानता, स्नेह और मौजमस्ती का अबीर-गुलाल सभी के गालों पर मसल दें, जिससे चारों ओर हँसती हुई प्रकृति की तरह हमारा तन-मन भी बिहँसने लगे। आवश्यकता है होली के इस संदेश को जन-जन तक पहुँचाने की। अनेक ऐसी संस्थाएँ हैं जो आपसी मेल-जोल, भाईचारे और साम्प्रदायिक सद्भाव के लिए निरन्तर प्रयासरत है। विश्व धर्म शांति सम्मेलन, भारत ज्ञानविज्ञान समिति जैसी संस्थाओं के प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। काशी देश की सांस्कृतिक नगरी है। इसे लघुभारत भी कहा जाता है, यहाँ देश के सभी भागों से सभी वर्गों के लोग रहते हैं। यहाँ की पिचकारी में तरह-तरह के रंग भरे हुए हैं। आइये हम सभी मिलकर इन रंगों से सभी को सराबोर कर दें। •

शिवरात्रिजागरण की बेला

—स्वामी रघुवंश पुरी

'शिवरात्रि' आशुतोष औढ़रदानी शंकर का अतिप्रसिद्ध पर्व है, जो सारे भारत वर्ष में धूमधाम से मनाया जाता है। वर्ष भर अगर कोई शिव-पूजन नहीं कर पाता है, उसे केवल एक दिन के पूजन से ही संपूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है। बड़े से बड़े पाप के प्रायश्चित का उपाय वेद शिव की आराधना बतलाते हैं। शंकर ही वेदों में 'रुद्र' नाम से प्रसिद्ध हैं जो पुराणों और लोक में शिव कहलाए। 'शिव की रात्रि' या 'शिवकारिणी रात्रि'- इस व्युत्पत्ति से शिव के कल्याणकारी स्वरूप का पता चलता है। रात्रि का अर्थ है- 'राति सुखं ददाति इति रात्रिः' जो संपूर्ण प्राणियों को आनंद प्रदान करे उसे रात्रि कहते हैं। कहीं-कहीं रात्रि का अर्थ अज्ञानांधकार के रूप में प्रतिपादित किया जाता है। शिव, शम की शक्ति से तम की अनुरक्ति का विनाश करते हैं, संपूर्ण जीव-जगत को अपने संविद् प्रकाश से आलोकित करते हैं। शिवरात्रि में हम उपवास करते हैं। उपवास का अर्थ ही है 'उप समीपे वासः उपवासः' अर्थात् परमात्मा को अपने पास महसूस करना या अपने को परमेश्वर से नजदीक लाना। अपनी आत्मसत्ता में परमात्म-सत्ता का अनुभव ही परमेश्वर से अभिन्नता है। शिवरात्रि में जो पूजन करते हैं उसकी भी आध्यात्मिकता पर हमें ध्यान देना होगा। आचार्य मनु कहते हैं- 'नहि अनध्यात्मविद् कश्चित् क्रियायाः फलमश्नुते' अर्थात् शिव को जल की धारा बहुत प्रिय है। केवल जल मात्र से ही शिव संतुष्ट हो जाते हैं। आचार्य यास्क ने जल को 'कर्म' का प्रतीक बनाया है- 'आपो वै कर्म'। कोई भी कर्म प्रारंभ करने से पहले ब्राह्मण हाथ में जल और अक्षत देकर संकल्प कराते हैं। हम अपने कार्य को शुद्ध रूप से संपादित करके शिव को समर्पित करें तभी हमारा जल चढ़ाना सफल हो पाएगा। शिव को जल नहीं, अखण्ड जल धारा चढ़ानी है। जो नित्य-निरंतर धीरे-धीरे बहती रहे। यहाँ अपने चित्त को घड़ा बनाकर उसमें भक्ति रस का जल भरकर मन के छिद्र (वृत्ति) को शिव के अभिमुख और सतत् शिव-सूक्तों का मनन करना ही जलधारा-समर्पण है। शिव इस अभिषेक से अति प्रसन्न होते हैं।

प्रकृति की आकृति से मन में जो विकृति का उदय होता है जीव को शिव से अलग करता है। शिव चरणों में अपने अक्षत मन को चढ़ाना ही अक्षत चढ़ाना है। काम-क्रोध से जो क्षत नहीं हुआ ऐसा मन ही अक्षत कहलाता है। भंग-धतूरे का अर्पण व्यसनों से मुक्ति का मार्ग दर्शाता है। भगवान शंकर भुवनभवभंग व्यसनी हैं अर्थात् संहार के देवता हैं। पुरातन तन को लीन कर नवीन का उद्भव ही शिव की संहरण लीला है। जैसे रात्रि के अंधकार में सारे प्राणी सो जाते हैं पर साधक

जागता रहता है उसी तरह, एक दिन के लिए ही सही, पर संपूर्ण शिव-साधक रात्रि जागरण करते हैं। गोस्वामी जी ने अपने मानस में इस भाव को यों ग्रथित किया है–

जेहि जग जामिनी जागहिं जोगी।
परमारथी प्रपञ्च वियोगी।।

गीता भी इसी का उद्घोष करती है– या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'। अर्थात् संयमी साधक संसार के मोह-माया में भ्रमित नहीं होते हुए सदा जगा रहता है। यह 'जागरण' अज्ञानरात्रि से सावधान रहने की क्रिया है। जागकर ही मनुष्य लक्ष्य तक पहुँचता है। सोना तो खोना ही खोना– 'जो सोया वो खोया'। रात्रिजागरण से यह भी प्रतीकार्थ ग्रहण किया जा सकता है कि हम अपनी वासनाओं से सावधान होकर शक्ति को संचित करें। तमोगुण की अधिकता में ही काम का प्रहार होता है। कहीं-कहीं विद्वद्जनों ने शिवरात्रि का अर्थ 'शिव-शक्ति' का मिलन बतलाया है। शिव-शक्ति के योग से ही संपूर्ण भावयोग बनता है। यह संयोग ऐसा है कि कभी भी वियोग होता नहीं। महाराज ज्ञानेश्वर ने अपनी शिव-स्तुति में इस तत्व का बड़ा ही सुंदर प्रतिपादन किया है

'शिवरात्रि' शिव के निर्गुणता से सगुणता में अवतरण का उत्सव है। हम कह सकते हैं कि निर्गुण शिव ही शंकर रूप में प्रकट हुए तभी से फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को यह पर्व प्रारंभ हुआ। शिव पुराण कहता है कि– ब्रह्मा-विष्णु विवाद के मध्य ही महालिंग ज्वाला के रूप में प्रकट हुआ और 'कौन बड़ा' इसका निर्विवाद उत्तर दिया, तब से ही इस लिंग की पूजा प्रचलित हुई। शिव के चिह्न को ही शिवलिंग कहते हैं। आज भी अरुणांचलम् इस बात का प्रमाण है जहाँ पर सर्वप्रथम् शिवलिंग प्रकट हुआ तथा श्री रमण महर्षि ने भी वही शिव का साक्षात्कार किया। शिवरात्रि में चतुर्याग पूजन का विधान है जिससे हमारे चतुर्वेद प्रतिपादित चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की सिद्धि हो जाए। हम जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति से उत्थित होकर चौथी अवस्था 'तुरीय' में पहुँच सके, जहाँ शिव का साम्राज्य है। योगी अपनी कुण्डलिनीशक्ति को जगाकर ही सहस्रार में शिव का साक्षात्कार करता है और रात्रि को भी वह शिवमय बना देता है। वस्तुतः शिवरात्रि 'शिवाय रात्रि' है जिसमें पञ्चाक्षरी 'ॐ नमः शिवाय' इस मंत्र का विचार करते हुए अपने अज्ञानमय जीवन को ज्ञान-प्रकाश से भरने की प्रेरणा मिलती है और तभी हमारी शिवरात्रि सार्थक हो पाती है। •

न के लिए
दीशचन्द्र बोस
ड़े। अन्ततोगत्वा
से मनुष्य की नाड़ी
भी नाड़ी चलती है।
ान है जब तक उसकी
पेड़ों की भी आयु तब
नाड़ीस्पन्दन समाप्त हो
य को कि पेड़ों में प्राण
लए हमारे वेदों ने एक
पानी के मुरझा जाय
। विज्ञान के कठिन
तनी आसानी से
त्य एक है।
nes meet
न में

लेकिन
हिन्दू। यहाँ एक
अनन्त में जाकर ए
प्रमाणित होता है कि ध
है।
हमारा धर्म कहता है
तस फल चाखा' यानी जै
फल मिलेगा। हम आम
तथा इमली बोयेंगे तो इ
कर्म करेंगे तो दुःख भोगेंगे
सुख भोगेंगे। धर्म का यह
इस सिद्धान्त का किसी
विज्ञान में न्यूटन के तीसरे
गया है कि "Every
and opposite re
की प्रतिक्रिया भी
की। हमारे

धर्म एवं विज्ञान का सत्य एक है

—दीनानाथ झुनझुनवाला

राष्ट्र संत श्री रमेश भाई ओझ़दानी शंकर का धर्म और विज्ञान एक है, जो सारे भारत नहीं, पूरक हैं। धर्म और विज्ञाता है। वर्ष भर अगर अलग है लेकिन लक्ष्य पाता है, उसे केवल एक खोज। विज्ञान बाह्य की ख फल की प्राप्ति हो जाती आन्तरिक। विज्ञान शोध प्रायश्चित का उपाय वेद करता है लेकिन धर्म मानाते हैं। शंकर ही वेदों में

विज्ञान शोध की भजो पुराणों और लोक में की। ज्ञान का प्रयोग पक्ष रात्रि' या 'शिवकारिणी गीता, गंगा, गाय, गायत्री शिव के कल्याणकारी अति धार्मिक माना लेकिन है। रात्रि का अर्थ है– उपयोगी माना। इससे एक स्' जो संपूर्ण प्राणियों है कि जो वस्तु या सिद्धा कहते हैं। कहीं– धार्मिक है वह उतना ही उपयो र के रूप में एवं उपयोगिता का सीधा सम्बन्ध है। शक्ति से मानो, विज्ञान में पहले जानो। धर्म का माध्यम मन है, विज्ञान का माध्यम यंत्र है। हमारे ऋषियों को मंत्रों का द्रष्टा माना गया, स्रष्टा नहीं। धर्म की मान्यता है कि मंत्र पहले से था, ऋषि ने आज देखा अतः वह द्रष्टा हो गया। हमारे आचार्य इन मंत्रों को समाज में प्रस्थापित करते हैं। धर्म में जो काम ऋषि करते हैं विज्ञान में उसी काम को रिसर्चर करते हैं। विज्ञान की उपलब्धियों को समाजोपयोगी बनाने का काम उद्योग के द्वारा तकनीकी व्यक्ति करता है।

उपरोक्त सूत्रों को कुछ दृष्टान्तों के द्वारा हम समझने का प्रयास करेंगे। धर्म कहता है कि हमारी अनध्यात्मविकारण हम दुःखी रहते हैं। ये इच्छाएँ, अर्थात् शिव कोरे दुःखों की मूल है। इच्छा एवं केवल जल मात्र सी घटती जायेंगी हमारा दुःख आचार्य यास्क ने जल होता जायेगा। जिस क्षण है– 'आपो वै कर्म'। कोगी उसी क्षण हमारा दुःख पहले ब्राह्मण हाथ में हो जायेंगे। विज्ञान ने इसी संकल्प कराते हैं। हम अ प्रतिपादन किया कि संपादित करके शिव को ersely proportionate जल चढ़ाना सफल हो प्कथन का सत्य एक है। अखण्ड जल धारा चढ़ हैं 'विषस्य विषमौषधम्। धीरे-धीरे बहती रहे। वष है। होमियोपैथी में जिस बनाकर उसमें भक्ति ता है उसी जीवाणु की दवा छिद्र (वृत्ति) को ती है। विज्ञान ने एक सूत्र दिया शिव-सूक्तों क s repel each other." है। शिव जगत में भी देखते हैं कि पुरुष का आकर्षण पुरुष के प्रति नहीं होता, स्त्री के प्रति होता है। इसी प्रकार स्त्री का आकर्षण भी स्त्री के प्रति न होकर पुरुष के प्रति होता है।

विज्ञान में महान वैज्ञानिक न्यूटन ने एक सूत्र दिया कि पेड़ से सेब नीचे क्यों गिरा। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के कारण। लेकिन हमारे वेदों ने कहा कि प्रत्येक वस्तु अपने मूल की ओर जाती है। पेड़ से सेब नीचे क्यों गिरा, कारण पेड़ का मूल पृथ्वी है। इसी प्रकार पहाड़ों का जल नदियों के द्वारा समुद्र की ओर क्यों जाता है। कारण जल का मूल समुद्र है। अतः अपने मूल की ओर जाता है। फिर वेद कहते हैं कि दीपक के प्रकाश की लौ

ऊपर की ओर क्यों जाती है। कारण प्रकाश का मूल सूर्य है, सूर्य ऊपर है, अतः वह लौ ऊपर जाती है अपने मूल की ओर। इस प्रकार धर्म एवं विज्ञान का सत्य एक है।

पेड़ों में प्राण हैं, इसे साबित करने के लिए हमारे देश के महान वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस को कितने-कितने प्रयोग करने पड़े। अन्ततोगत्वा उन्होंने यह दिखा दिया कि जैसे मनुष्य की नाड़ी चलती है, उसी प्रकार पेड़ों की भी नाड़ी चलती है। मनुष्य उसी समय तक प्राणवान है जब तक उसकी नाड़ी चलती है। इसी प्रकार पेड़ों की भी आयु तब समाप्त होती है जब उनका नाड़ीस्पन्दन समाप्त हो जाता है। विज्ञान के इस सत्य को कि पेड़ों में प्राण होता है प्रमाणित करने के लिए हमारे वेदों ने एक सूत्र दिया कि 'जो चीज बिना पानी के मुरझा जाय आप समझ लो उसमें प्राण है। विज्ञान के कठिन प्रयोग एवं सूत्र को धर्म ने कितनी आसानी से समझा दिया। इसी प्रकार धर्म का सत्य एक है।

विज्ञान कहता है कि "parallel lines meet at infinite" यानि समानान्तर रेखायें अनन्त में जाकर मिल जाती हैं। धर्म कहता है कि आप चाहे ज्ञानमार्ग से चलें या भक्तिमार्ग से, दोनों का गन्तव्य एक है। हिन्दुओं एवं मुसलमानों के लोकाचार में एकदम विपरीत मान्यताएँ हैं। जैसे हिन्दू पालथी मारकर पूरब की ओर मुँह करके पूजा करता है लेकिन मुसलमान पैर पीछे मोड़कर पश्चिम की ओर बैठकर अपनी नमाज अदा करता है। हिन्दुओं के मन्दिरों में मूर्तियाँ हैं लेकिन मुसलमानों के मस्जिद में कोई मूर्ति नहीं है। हिन्दू बायें से दाहिने लिखता है लेकिन मुसलमान दाहिने से बायें लिखता है। हिन्दुओं का विवाह बिना लग्न के सगोत्र नहीं होता लेकिन मुसलमान के गोत्र होता नहीं एवं जब चाहे विवाह कर सकते हैं। इस प्रकार की अन्य अनेक मान्यताएँ एकदम विपरीत हैं लेकिन सच्चा मुसलमान वहीं पहुँचेगा जहाँ सच्चा हिन्दू। यहाँ एकदम विपरीत दीखने वाली मान्यताएँ अनन्त में जाकर एक हो जाती हैं। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि धर्म एवं विज्ञान का सत्य एक है।

हमारा धर्म कहता है कि 'जो जस करई सो तस फल चाखा' यानी जैसा कर्म करोगे वैसा ही फल मिलेगा। हम आम बोयेंगे तो आम मिलेगा तथा इमली बोयेंगे तो इमली मिलेगी। हम पाप कर्म करेंगे तो दुःख भोगेंगे एवं पुण्य कर्म करेंगे तो सुख भोगेंगे। धर्म का यह सिद्धान्त सर्वमान्य है। इस सिद्धान्त का किसी धर्म में विरोध नहीं है। विज्ञान में न्यूटन के तीसरे लॉ ऑफ मोशन में कहा गया है कि "Every action has an equal and opposite reaction" यानी प्रत्येक कर्म की प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होगी जितनी कर्म की। हमारे देवताओं में जितनी शक्ति सृजन करने की है उतनी ही शक्ति से वे संहार भी कर सकते हैं। हमारी तलवार हमारी सुरक्षा कर सकती है, दूसरे का गला काट सकती है तो हमारा भी गला काट सकती है। अणु में बम बनकर संहारक शक्ति है तो बिजली बनकर सृजनशक्ति भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म एवं विज्ञान का सत्य एक है।

हमारे ऋषि मंत्रद्रष्टा कब होते हैं, जब वे समाधि की अवस्था में होते हैं। समाधि वह अवस्था है, जब मन एकाग्र हो। इसी प्रकार वैज्ञानिक भी प्रयोगशाला में जब प्रयोग करते हैं तो इतने एकाग्रचित्त होते हैं कि उन्हें यह मालूम ही

नहीं होता कि मैंने भोजन किया या नहीं या हमारे बगल में भी कोई खड़ा है। अतः धर्म एवं विज्ञान की उपलब्धि उनकी एकाग्रचित्तता के कारण है, अतः दोनों का सत्य एक है।

कभी-कभी कुछ धर्माचार्य विज्ञान की निन्दा करते हैं लेकिन विज्ञान की उपलब्धियों का सेवन भी करते हैं। जैसे कहते हैं कि जब से टी.वी. आई चरित्र में गिरावट आ गई। वे यह भूल जाते हैं कि उसी टी.वी. से अच्छे सन्त-महात्माओं का प्रवचन भी हम सुनते हैं। यह तो हमारी प्रवृत्ति पर निर्भर करता है कि टी.वी. में हमें क्या देखना है। काँटे एवं गुलाब की जड़ एक है। हम गुलाब पाने के लिए न तो काँटों को नष्ट करते हैं और न उन्हें कोसते हैं। गुलाब पाने के लिए हम काँटों से बचते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म एवं विज्ञान का सत्य एक है। जानने का मार्ग दोनों का अलग-अलग है। जैसे गंगा पहुँचने के मार्ग कई हैं लेकिन किसी भी मार्ग से चल कर हम गंगा पहुँच जाते हैं। सभी अपने-अपने मार्ग का अनुसरण करें। अपने मार्ग को अच्छा एवं दूसरे का बुरा बताने की आवश्यकता नहीं। अपने ही मार्ग में गहराई होनी चाहिए। पूरी श्रद्धा एवं विश्वास होना चाहिए। हमारे यहाँ कहते हैं "विश्वासो फलदायकः" जैसे थोड़ा-थोड़ा कुआँ खोदने से जल नहीं मिलेगा चाहे जितने कुएँ खोद लें। एक गहरा कुआँ खोदने से जल मिल जायेगा। वैज्ञानिक अपने पंथ का अनुयायी बने, धार्मिक व्यक्ति अपने पंथ का अनुयायी बने। दोनों एक ही मान्यता में विश्वास रखें कि सत्य की खोज ही कर रहे हैं, केवल दोनों मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।

●

मालिकों से सम्बन्धित विवरण

१९५८ के रजिस्ट्रेशन ऑफ न्यूज पेपर्स (केन्द्र सरकार) नियम की धारा ८ के अन्तर्गत 'रस-बनमाली' मासिक पत्रिका से सम्बन्धित विवरण इस प्रकार है-

प्रकाशक नाम स्थान	: के.४६/१०८-ए विशेश्वरगंज, वाराणसी
प्रकाशन की अवधि	: मासिक
प्रकाशक का नाम	: कमलेश बाजोरिया
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: के. ४६/१०८ ए, विशेश्वरगंज, वाराणसी
सम्पादक का नाम	: गोपालदास अग्रवाल
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: बसेरा विहार, फ्लैट नं० ५, जवाहर नगर, भेलूपुर, वाराणसी
प्रबन्ध सम्पादक	: कमलेश बाजोरिया
राष्ट्रीयता	: भारतीय
पता	: के. ४६/१०८ ए, विशेश्वरगंज, वाराणसी
पत्रिका मालिक	: श्रीमद्भागवत ज्ञान यज्ञ प्रचार समिति के. ४६/१०८ ए, विशेश्वरगंज, वाराणसी

मैं कमलेश बाजोरिया घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरी जानकारी में विश्वसनीय है।

धर्म : जीने की उन्नत शैली

— डॉ. जितेन ठाकुर

समय के साथ हुए परिवर्तनों ने भारतीय समाज से उसकी अपनी ही जीवनशैली को छीन लिया है। इसका स्पष्ट प्रभाव पर्यावरण एवं जैविक असंतुलन के रूप में दृष्टिगत हो रहा है। वास्तव में हिन्दू धर्म मानवजीवन को सुखद बनाने के लिए एक वैचारिक क्रांति का आह्वान करता है। जीवन के प्रत्येक पक्ष का गहन अध्ययन, विश्लेषण और निष्कर्ष ही हिन्दू धर्म में निहित आस्था का मूलमंत्र है। पर्यावरणविद्, समाज सुधारक, योग-गुरु इत्यादि आज अपने ज्ञान और कर्म का व्यवसायिक उपयोग कर धन उपार्जित कर रहे हैं। समाज को एक उन्नत जीवनशैली प्रदान करने की उनकी वास्तविक इच्छा कितनी है– शायद ही समझा जा सके। परंतु हमारे धर्म-ग्रंथों में आज भी वो चेतना विद्यमान है जो मानवजीवन की कल्पना के साथ संकलित एवं संग्रहीत की गई थी।

वायु एवं जल मानवजीवन का आधार है। इनके प्रति जागरूकता के उदाहरण हमें भविष्य पुराण में मिलते हैं। भविष्य पुराण के अनुसार एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस चिड़चिड़ा, तीन कैथ, तीन बेल, तीन आँवले और पाँच आम के वृक्ष लगाने वाले व्यक्ति को इतना पुण्य मिलता है कि मृत्यु के पश्चात् उसे नरक का मुँह नहीं देखना पड़ता। सर्वविदित है कि वृक्ष जहाँ पर्यावरण को संतुलित रखते हैं वहीं दैनिक जीवन के लिए फल, औषधि एवं ईंधन भी प्रदान करते हैं। वृक्षों का देवताओं की भाँति पूजन वास्तव में वृक्षारोपण के प्रति समाज को जागरूक करने एवं वनों को सुरक्षित रखने का ही प्रयास था। इसी प्रकार पीने के लिए स्वच्छ जल का प्रबंध करने को प्रेरित करते हुए लिखा गया है कि प्याऊ नगर के बीच में, रास्ते में, जंगल में निर्जल स्थान में, देवालय में अथवा चौराहे पर घने छायादार चैत्य वृक्ष के नीचे बनाने चाहिए। ये प्याऊ खूब ठंडी, सुंदर, भाँति-भाँति के आसनों से युक्त उत्तम, सुदृढ़ एवं सर्दीगर्मी से बचाने वाले होने चाहिए। मंडप के मध्य में वस्त्र में लपेटे हुए

सुंदर घड़े एवं सुराहियाँ भी रखनी चाहिए। उचित वेतन देकर इसका रक्षक नियुक्त करने का भी संदेश मिलता है जिससे थके हुए आदमियों को शीतल जल पिलाकर सुख प्रदान किया जा सके। ऐसे प्याऊनिर्माण कराने वाले व्यक्ति को मिलने वाले पुण्यलाभ की चर्चा करते हुए कहा गया है कि प्याऊनिर्माण से सभी तीर्थों में जाने का, सभी दानों को देने का और सभी देवताओं की पूजा करने का फल प्राप्त होता है।

कहना न होगा कि पाप और पुण्य वास्तव में सामाजिक जीवन को नियंत्रित, उन्नत एवं सुखद बनाने के लिए अंकुश एवं प्रोत्साहन के रूप में प्रयोग किये जाते थे। भविष्य पुराण में ही शिक्षा के महत्व को दर्शाते हुए लिखा गया है कि विद्यादान देने वाले व्यक्ति को एक हजार वाजपेय यज्ञों के बराबर फल मिलता है। इसलिए धर्मात्मा पुरुष को विद्यादान के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए। तीनों लोक, चारो वर्ण, चारो आश्रम और ब्रह्मा आदि सभी देवता विद्यादान में ही प्रतिष्ठित होते हैं। इतना ही नहीं विद्यार्थियों के अध्ययन को सहज सरल बनाने के लिए भी युक्तिपूर्ण प्रयत्न दृष्टिगत होते हैं, जो वास्तव में गुरु-शिष्य परंपरा के अन्तर्गत चलने वाली पाठशालाओं के सुचारु प्रबंधन के लिए किए गए प्रयास थे, जिससे पढ़ाने और पढ़ने वाले दोनों को प्रेरित एवं आकर्षित किया जा सके।

समाज में स्त्री के सम्मान को बनाने और बढ़ाने का प्रयास भी हमें देखने को मिलता है। कहा गया है कि जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, वास्तव में वही घर है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। जहाँ इनका अपमान होता है, घर शीघ्र ही चौपट हो जाता है। स्त्रियाँ तिरस्कृत होकर जिन घरों को शाप देती हैं, वे घर कृत्या राक्षसी के द्वारा हत होने की तरह दुर्दशाग्रस्त हो जाते हैं। इसके अनुसार गृहस्थआश्रम का मूल आधार श्रेष्ठ गृह है और गृह से भी श्रेष्ठ गृहिणी है। यह कथन समाज में स्त्रियों को प्रतिष्ठित करने की चेष्टाओं को दर्शाता है।

आज स्नान के महत्व के अनेक चिकित्सकीय लाभ बताये जाते हैं। स्नान के इसी महत्व को दर्शाते हुए भविष्य पुराण में लिखा है कि स्नान के बिना चित्त की निर्मलता और भाव-शुद्धि नहीं आती। अतः शरीर की शुद्धि के लिए सर्वप्रथम स्नान का ही विधान है। स्नान के चार भेद बताए गये हैं—गाय की धूलि से किया जाने वाला वायव्य स्नान, समुद्रादि के जल से किया जाने वाला स्नान, धूप में होने वाली वर्षा के जल से किये जाने वाला दिव्य स्नान और वैदिक मंत्रों द्वारा किया गया स्नान ब्राह्म स्नान कहा जाता है। इसमें वरुण अर्थात् जल के स्नान को ही विशेष महत्व दिया गया है।

हमारे पूर्वज जल की संवेदनशीलता से भलीभाँति परिचित थे। यही कारण था कि श्राप देते समय अंजुरी में जल भर कर फेंका जाता था या फिर शुभ कार्यों पर पवित्र जल का छिड़काव होता था। ऐसे में जल मनुष्य की भावनाओं का संवाहक बन जाता था और सामने वाले को उसके अनुरूप प्रतिफल प्रदान करता था। इसी लिए हमारे ग्रंथों में स्नान करते समय पवित्र नामों को स्मरण करने के निर्देश मिलते हैं, जिससे जल की संवेदना पर अपवित्र प्रभाव न पड़े एवं जल केवल शरीर ही नहीं वरन् मन की शुद्धि का कारण भी बन सके।

इस प्रकार हमारे धर्मग्रंथों में वैयक्तिक एवं सामाजिक उन्नति का मूलमंत्र निहित है। आवश्यकता है तो बस इसकी कि हम इनका चिंतन, मनन एवं अनुसरण करें। •

अश्वगंधा

तनावजन्य रोगों की अचूक औषधि

सं०–डॉ०सॉवरमल नदीवाला

अश्वगंधा में रोग निवारण और स्वास्थ्य संरक्षण की अपूर्व शक्ति है। इसी कारण सदियों से आयुर्वेद में अश्वगंधा को सत्कारिक औषधि का स्थान प्राप्त है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अश्वगंधा की तुलना चीन की बहुचर्चित औषधि 'जेनसिंग' से की जा सकती है। अश्वगंधा भारत में सरलता से सर्वत्र उपलब्ध है। अश्वगंधा तनावजनित रोगों को दूर करने में बेहद कारगर है।

अश्वगंधा का क्षुप (एक छोटा पौधा) २ से ५ फुट ऊँचा होता है। इसकी शाखाएं गोलाकार और चारों तरफ फैली होती हैं। शरद ऋतु में इस पौधे में फूल आते हैं। आयुर्वेद के अनुसार अश्वगंधा कफवातनाशक, बल-वीर्यवर्धक और मानसिक तनावजन्य रोगों की श्रेष्ठ औषधि है। अश्वगंधा के कुछ लाभप्रद प्रयोग-नुस्खे इस प्रकार हैं:-

- आयु व आवश्यकता के अनुसार अश्वगंधा का चूर्ण ३ से १० ग्राम प्रतिदिन सुबह-शाम गर्म दूध से सेवन करें। यह नुस्खा शारीरिक कमजोरी, धातुक्षीणता, स्नायविक दुर्बलता, अनिद्रा तथा मानसिक तनाव को दूर करने में विशेष लाभप्रद हैं।
- बच्चों के सूखा रोग (रिकेट्स) में अश्वगंधा का प्रयोग सदियों से किया जाता रहा है।
- क्षयरोग (टी.बी.) के उपचार में अश्वगंधा लाभप्रद है।
- प्रसवोपरांत आई दुर्बलता को दूर करने में भी अश्वगंधा उपयोगी है।
- चेन्नई के डा. के.राजन द्वारा किए गए एक शोध के अनुसार अश्वगंधा आयुवर्धक और रक्तवर्धक है।
- जोड़ों के सूजन व शरीर की किसी ग्रंथि के सूजन में अश्वगंधा के पत्तों का लेप लाभकारी है।
- अश्वगंधा के पौधे का ताजा रस १० से ३० मिली.ली. शहद में मिलाकर मिलाकर सुबह-शाम सेवन करें। यह नुस्खा गठिया / वात (गाउट) में लाभकारी है।
- अश्वगंधा व तिलचूर्ण को समान मात्रा में मिलाएं। फिर इस मिश्रण को ३ से ५ ग्राम प्रतिदिन गुड़ के साथ सेवन करें। यह नुस्खा स्त्रीरोगों को दूर करने में सहायक है।
- अश्वगंधा चूर्ण और गिलोय को समान मात्रा में मिलाएं। प्रतिदिन सुबह-शाम ३ से ६ ग्राम मात्रा में इसे गर्म जल के साथ सेवन करें। यह नुस्खा पुराने बुखार को दूर करने में लाभप्रद है। •

आतंक नहीं, प्यार की गंगा बहाओ

— ब्रह्माकुमार राम लखन

निकट भविष्य में आने वाली दुनिया की विशेषता होगी निःस्वार्थ प्यार। स्वाभाविक रूहानी स्नेह। सतयुग में कभी न सूखने और मंद पड़ने वाला प्यार सदा प्रवाहित रहने वाले झरने की तरह सतत् प्रवाहमान रहेगा। ना कोई किसी से नाराज ना ही रुष्ट रहेगा। वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, मनमुटाव-फसाद, मुकदमेबाजी का वहां नाम निशान नहीं होगा। ऐसा अहसास सदा रहेगा कि सभी प्यार के पुतले हैं। पति-पत्नी में भी प्रगाढ़-पवित्र आत्मीयता होगी। श्री लक्ष्मी, श्री नारायण जी को अति स्नेह के सूचक चार भुजाधारी विष्णु व महालक्ष्मीरूप में इसीलिए दर्शाते हैं। शुद्ध प्यार के बने होने के कारण वहां के देवी-देवता एक दूसरे के संकल्पों को भी अच्छी तरह से पहचानते हुए संबंध-व्यवहार में आते हैं। हर कोई वहाँ दूसरों को देने की सोचता रहता इसलिए वहाँ का प्यार शुद्ध सोने की तरह होता है। लेने की खींचतान व तमन्ना वहाँ किसी में होती ही नहीं। सभी एक दूसरे के लिए न्यौछावर रहेंगे तब भला लड़ाई-झगड़ा क्यों होगा? लड़ाई, मारा-मारी तो पतित-शक्तिहीन अत्माओं की निशानी है।

किसी के भी मन में बनावट-दिखावट, छल-कपट जैसी कोई भी गंदगी स्वर्ग में नहीं होती। देने के लिए आतुर सभ्यता को ही सतयुगी संस्कृति कहा जाता है। सदा दाता, लेता राम न होने कारण सहज ही सभी देवी-देवता कहलाते हैं। धर्म स्वाभाविक रूप से जीवन की धारणा में रहेगा। स्वाभाविक रूप से सभी में दिव्य गुण होने के कारण ही सभी देवी-देवता बन जाते हैं। प्रेम, सद्भावना सहिष्णुता की बातें तो आज भी धर्म वाले करते हैं। बुराइयों को छोड़ भाई-चारे से रहने की शिक्षा देते हैं। पर अलग धर्म होने की वहाँ कोई बात ही नहीं होती। उच्च धारणाएँ वहाँ स्वतः आचरण में रहेंगी। दिव्यता ही हर किसी का स्वाभाविक लक्षण होगा। किसी दूसरी प्रकार की धार्मिक ध्वजा, संकीर्णता व भवनों का नामो-निशान नहीं रहेगा। सोचिए, आज के धर्म-सम्प्रदाय, जाति-पाति थे ही नहीं तो क्या था? वैकुण्ठ वाली दुनिया एक धर्म, एक भाषा व एक राज्य वाली थी। पक्का ही समझ लीजिए कि फिर से वही संस्कृति शिव बाबा स्थापित करके ही जायेंगे जिसमें सभी के सभी धार्मिक होंगे। विभेद कहीं होगा ही नहीं।

संसार के सभी लोगों को समझ लेना पड़ेगा कि हम तारे-सितारों की तरह ही ज्योतिस्वरूप आत्माएँ हैं। सभी एक ही प्रकाशमय चैतन्यतत्व शांतिधाम के निवासी हैं। वही पहले वाला बहिश्त वा सचखण्ड फिर से स्थापित होकर ही रहेगा। इसलिए सभी को उसी पुनीत प्यार व भ्रातृत्वभाव से नवसृष्टि के सृजन का निमित्त बनना पड़ेगा। विश्व भर में खुशियों का नगाड़ा व एकता की शहनाइयाँ बजानी पड़ेंगी तभी सारे मजहबी दंगे समाप्त हो जाति-पाति ऊँच-नीच, घृणा-नफरत समाप्त हो खुशियों भरे गीत-संगीत-नृत्य सर्वत्र दिखाई देने लगेंगे। आतंक-पापाचार व भ्रष्टाचार का वहां नाम-निशान भी नहीं होगा।

परमात्मा का प्रमुख गुण ही है प्रेम का सागर। कलियुग के अंत तक अनेकों प्रकार से अभिनय करते-करते उनकी संतान हम आत्माएँ विषय पथों में भटक कर बिरस बन गयी हैं। तभी तो सुख के सागर शिव भगवान खुद अवतरित होकर अपने प्रीतिमय परमधाम की राह बता रहे हैं। आत्माओं को साथ-साथ ले जाने के लिए अपने गले का हार बना रहे हैं। जो आत्मायें परमप्रीतिपूर्वक उनकी स्मृति बनाये रखती हैं वे ही उनके गले का हार बनती हैं व विजय माला में भी पिरोई जाती है। परमात्मा में परम प्रीति रखने वाली आत्माओं के तन पर ही शुद्ध-सूक्ष्म परमाणुओं का आवरण चढ़ा रहेगा। स्वर्ग में उनकी काया कंचन समान होने से उनकी नस-नाड़ियों में बहता झर-झर खून भी पारदर्शी स्वच्छ शरीर के कारण दिखाई देता रहेगा। साधनों प्रसाधनों से सजी-सजायी फिर भी न्यारी-प्यारी आत्माएँ ही वन्दनीय-पूजनीय बन पायेंगी।

परमात्मा सर्व आत्माओं के परम प्रियतम साजन हैं। अब हम आत्मा रूपी सजनियों का हर क्षण एक उसी के लिए होना चाहिए। इसीलिए सूर-तुलसी-जायसी जैसे प्रेमरस में पगे हुए संतों ने अपने इष्ट देव से प्रीति बढ़ाने के लिए ऐसे आदर्श शास्त्र रच डाले कि आज भी लोग उनकी भावधाराओं में मगन रहते हैं। आत्मा शब्द में ढाई ही अक्षर हैं। इसका 'आ' आनन्द-परमानन्द की ओर इशारा करता है तो 'त' त्याग-तपस्या-सेवा-साधना की तरफ जाने को कहता है। इसका 'मा' तो मां की तरह मधुरिम जीवन जीने व जीवन दान देने का ही सुख देता है। आसक्ति रहित हो कर्म सम्बन्धों में आने पर जीवन कमल समान खिला रहता है। शब्द-स्पर्श, रूप-रस-गंध रूपी विषय-पथ पर भागते रहने से तो आत्मा पर कालिख ही पुतती रहती है। स्वर्ग में इन्द्रियों को कमलवत व्यवहार में से ही जीवन निर्मल व सर्व सम्पदाओं से भर पूरा रहता है।

हर आत्मा परमात्मा की सजनी है इसलिए स्वभावतः आत्मीयता से भरी रहती है। जैसे सदा शिव कल्याण कारिता से ओत-प्रोत रहते हैं इसी तरह आत्मा भी प्रीति की रीति निभाने वाली हैं। कलह क्लेश से कलियुग में कलुषित हो विकारों की बदबू फैला रही हैं। जबकि सतयुग में 'आत्मवत सर्व भूतेषु' (सर्व को स्वयं के समान) वाली कहावत चरितार्थ होती रहती थी। अब तो व्यवहार के हर कोण पर दुराव-टकराव-मनमुटाव व छलाव ही छाया रहता है। मानव-दानव बन आततायी की तरह अत्याचार में लगा रहता है। नर-नारी निशाचर की तरह भटकते हुए हाहाकार मचाए रखते हैं। राजा-रंक सभी विकारों के ही वशीभूत रहते हैं। मंगलकारी ज्ञानसागर शिव परमात्मा खुद धरा पर अवतिरित हो ज्ञानप्रकाश फैलाता रहे तो भी लोग अंधेर नगरी में ही भटक रहे हैं।

प्रीतिमय जीवन के कारण देवी-देवतायें प्रातः स्मरणीय हैं तो ठगी करने वाले रावण-होलिका जैसे लोगों के पुतले भी जलाये जाते हैं। पुरुषोत्तम संगम युग पर कई विश्वसेवा की भावना से संसार में प्रकाश फैलाते हैं तो कई क्षेत्रीयता-जातीयता, स्वार्थपरता जैसे हंगामे भी करने से नहीं चूकते हैं 'सर्व जनहिताय-सर्व जन सुखाय सर्वस्वं स्वाहा' करने वाले ही ईश्वरीय गले का हार बन विजयी मनकों के रूप में पूजे जाते हैं। परमपिता परमात्मा भी ऐसी प्रेम की गंगा बहाने वाली आत्माओं के उत्थान व साज-संभाल में सदा ही तैयार रहते हैं। तो आइए फिर से वही प्रीतिमय स्वर्णिम संसार बसाएँ। ●

श्री वैद्यनाथ धाम

— हरि प्रसाद कनोई

पूर्वोत्तरे प्रज्वलिका निधाने सदा वसन्तं गिरिजा समेतं सुरासुरा राधित पाद-पद्मं, श्री वैद्यनाथं तमहं नमामि।

बिहार के संथाल परगना में देवघर नामक शहर है, जिसे वैद्यनाथधाम अथवा बाबाधाम के नाम से भी जाना जाता है। भारत के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में यह भी एक है। वैसे 'परल्यां बैद्यनाथं च' के अनुसार महाराष्ट्र में परमनी नामक रेलवे जंक्शन है, जहाँ से परली तक एक ब्रांच लाइन गई है। इस परली स्टेशन से थोड़ी दूर पर परली-नामक ग्राम के निकट वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग बतलाया जाता है, पर शिवपुराण के अनुसार 'बैद्यनाथं चिता भूमां' का उल्लेख मिलता है और यही विवरण द्वादश ज्योतिर्लिंग के उपरोक्त श्लोक में प्राप्त होता है। इसके अनुसार बिहार के देवघर शहर में स्थिति शिवपीठ ही वास्तविक वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग सिद्ध होता है, क्योंकि यही भारत के पूर्वोत्तर अंचल में स्थित है तथा यही चिता भूमि है।

बिहार प्रदेश के संथापल परगना जिले में पूर्व रेलवे को कलकत्ता, दिल्ली मुख्य लाइन पर जसीडीह नामक स्टेशन है। यहाँ से बैद्यनाथ देवघर तक शाखा लाइन गई है। सड़क के रास्ते यह स्थान कलकत्ता से ३७५ किमी. तथा जसीडीह से ६ किमी. है। इस स्थान की धार्मिक मान्यता तो है ही, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह स्थान बहुत ही उपयुक्त है। अपनी प्राकृतिक सुषमा, आरोग्यप्रद आबोहवा और धार्मिक महत्व के कारण इसकी सारे भारत में प्रसिद्धि है। यहाँ जसीडीह में कलकत्ता के अधिकांश श्रीमन्त लोगों के भवन बने हुए हैं जहाँ निवास करने के लिए कलकत्ते तथा भारत के अन्य स्थानों से लोग आते रहते हैं।

इस धामकी प्रसिद्धि और प्राचीनता का पता कुछ पौराणिक कथाओं में मिलता है। शिवपुराण के अनुसार इस शिवलिंग की स्थापना त्रेतायुग में हुई थी। शिवपुराण में शंकर पार्वती संवाद के रूप में इस धाम की कथा इस प्रकार है–

लंका का राजा रावण एक दिन अपने राज दरबार में बैठे-बैठे सोचने लगा कि मुझे सब सुख-ऐश्वर्य प्राप्त हैं, पर जन्म लेकर कुछ अच्छे कर्म न किये तो यह सब व्यर्थ है। संसार के सकल सिद्धिदाता भगवान शंकर हैं, अतएव उन्हीं की आराधना करनी चाहिए। इस निश्चय के अनुसार वह कैलाश पर्वत पर आकर कठोर तपस्या करने लगा। उसने मन में संकल्प कर लिया कि जब तक भगवान शंकर मेरी राजधानी लंका में आकर वास नहीं करेंगे तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। इस प्रकार तपस्या करते-करते रावण एक दिन दर्शन के अभिप्राय से कैलाश द्वार को लांघ कर भीतर जाने लगा। नन्दी ने उसे रोका। रावण ने नन्दी को उठाकर नन्दीवन में फेंक दिया। फिर वह समूचे कैलाश को हिलाने लगा। कैलाश को हिलते देखकर भगवान शंकर ने नन्दी को पुकारा। तब रावण ने उत्तर दिया- नन्दी जी तो अभी नन्दनवन गये हैं। दास सेवा के लिए उपस्थित है, जो आज्ञा हो उसे पूरा करेगा। रावण की उत्कट तपस्या और दृढ़ नम्रवाणी से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने कहा– जो इच्छा हो तू माँग ले। रावण ने कहा– 'भगवान लंकापुरी चल कर निवास कीजिए, जिससे मैं नित्यप्रति आपकी सेवा में रत रहने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ। भगवान् शंकर ने कहा– तू मेरे द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से इस लिंग को

ले जा यह कामना लिंग है, इसकी पूजा अर्चना से मन इच्छित फल की प्राप्ति होगी। पर इसे रास्ते में कहीं भूमि पर नहीं रखना नहीं तो जहाँ रखेगा वहीं स्थापित हो जाएगा। रावण शिवलिंग को लेकर आकाश मार्ग से लंका के लिए रवाना हुआ। इधर देवताओं को यह आशंका हुई कि यदि रावण इस शिवलिंग को लंका में स्थापित कर लेगा तो वह देवताओं के लिए अजेय शत्रु साबित होगा। देवताओं ने माया का प्रपंच रचा। जल के देवता वरुण रावण के शरीर में प्रविष्ट हुए। फिर क्या था रावण को बहुत जोर से लघुशंका हुई और मूत्रत्याग के लिए लाचार होकर भूमि पर उतरना पड़ा। इसी बीच भगवान विष्णु एक ब्राह्मण का रूप धारण कर रावण के पास पहुँचे। रावण ने ब्राह्मण देवता से अनुरोध किया कि आप थोड़ी देर के लिए इस लिंग को अपने पास रखें। लघुशंका के बाद इसे मैं वापस ले लूँगा। ब्राह्मण देवता ने बड़ी प्रसन्नता से यह प्रार्थना स्वीकार ली। रावण शिवलिंग ब्राह्मण को सौंप कर स्वयं मूत्रत्याग के लिए आगे बढ़ गया। इधर ब्राह्मण देवता धीरे से खिसक गये और वहाँ चले आये जहाँ आज वैद्यनाथ देवघर है। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिवलिंग को पृथ्वी पर स्थापित कर दिया और अर्न्तध्यान हो गये। शिवलिंग पृथ्वी का स्पर्श होते ही पाताल पर्यन्त व्याप्त हो गया पृथ्वी पर सिर्फ आठ अंगुल रह गया जो अभी तक वर्तमान है।

उधर रावण का पेशाब बन्द नहीं हो रहा था। वह पेशाब करता ही रहा। इतमे में आकाशवाणी हुई कि– हे रावण, जिस विप्र को तूने शिवलिंग धरने को दिया, वे स्वयं भगवान विष्णु थे। उन्होंने लिंग को पृथ्वी पर स्थापित कर दिया है। आकाशवाणी सुनकर रावण चौंका। वह दौड़ पड़ा और ब्राह्मण को खोजते-खोजते उस स्थान पर पहुँचा जहाँ शिवलिंग स्थापित था। रावण ने लिंग को उठाने की बड़ी चेष्टा की पर नहीं उठा, हार कर क्रोध में उसने लिंग पर एक जोर का घूसा जमा दिया। लोगों का कहना है कि इसीलिए आज भी बाबा बैद्यनाथ का लिंग एक ओर धंसा हुआ दीख पड़ता है।

पीछे रावण को अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। वह वहीं रहकर लिंग की पूजा करने लगा। उसने बहुत बड़ा कूप खोदा और उसी में सभी तीर्थों का जल लाकर रखा। वह उसी कूप के जल से नित्य प्रति शंकर भगवान को स्नान कराता और तल्लीन होकर पूजा करता। वह कूप आज भी चन्द्रकूप के नाम से प्रख्यात् है। एक दिन रावण पूजनोपरान्त अपना सिर चढ़ाने के लिए प्रस्तुत हो गया। वह तलवार से अपना मस्तक काटने को तैयार हुआ कि शिवजी ने आकर स्वयं दर्शन दिये और कहा– हे भक्तराज रावण, मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। आज से इस लिंग की जो पूजा करेगा, गंगाजल और बिल्वपत्र अर्पण करेगा वह मेरे धाम का अधिकारी होगा। शिव का वरदान और आशीर्वाद पाकर रावण लंका को चला गया और तब से ही शिव के इस ज्योतिर्लिंग का नाम रावणेश्वर महादेव पड़ा जो अब तक प्रचलित है। उसके बाद बैजू नामक एक पुजारी ने रावणेश्वर महादेव की पूजा शुरु की, अतएव इस धाम का नाम बैजनाथ धाम पड़ा।

मन्दिर एक बहुत बड़े प्रांगण के बीच स्थित है। प्रांगण चारो तरफ दीवार से घिरा हुआ है। आने-जाने के लिए तीनतरफा दरवाजा है। प्रांगण के भीतर चारो तरफ पार्वती, श्याम, कार्तिक, काली, लक्ष्मीनारायण, नीलकण्ठ महादेव, अन्नपूर्णा देवी, आनन्द भैरव, राम, लक्ष्मण, सूर्यनारायण, सरस्वती, हनुमान, कुबेर, कालभैरव, सन्ध्या माई, ब्रह्मा, गणेश, गंगा आदि देवताओं के मन्दिर हैं। बाबा बैद्यनाथ का मन्दिर सबसे ऊँचा तथा सबके बीच में है। इस मन्दिर की

ऊंचाई ७२ फुट है। मन्दिर का निर्माण सन् १५९६ ई. में गिद्धौर के जमींदार पूर्णमल ने किया था। यहाँ गणेश जी की जो मूर्ति है, वह नृत्य की मुद्रा में है।

देवघर है तो छोटा सा शहर पर बिल्कुल आधुनिक ढंग से बसा हुआ है। पण्डों की तंग बस्तियों को छोड़ शहर में कहीं भी पुरानापन नहीं दीख पड़ता। अब शहर दिनों दिन फैलता जा रहा है। तीर्थ होने के कारण तो इसका फैलाव हुआ ही है, एक धारणा यह भी है कि यह स्थान बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद है। कहते हैं- यहाँ के जल में लोहा तथा अभ्रक मिला हुआ है। यहाँ एक प्रसिद्ध कुआं भी है जिसे बिलासी नाम के किसी व्यक्ति ने खुदवाया था। इसी से इस मुहल्ले का नाम बिलासी टाउन पड़ गया।

ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में यह शहर एक ऊँचे स्थान पर स्थित है। छोटी छोटी पहाड़ियों और चट्टानों में परिपूर्ण तथा हरे-भरे शाल जंगलों से सुशोभित यहाँ की भूमि पर्वतमालाओं की पृष्ठभूमि में अत्यन्त रमणीक मालूम होती है। श्रावण महीने में भक्तगण सुल्तानगंज से गंगाजल कावड़ों में भर कर १२० किमी. पैदल चलकर बाबा बैद्यनाथ की पूजा के लिए आते हैं।

शहर के उत्तर पश्चिम की ओर एक छोटी पहाड़ी है, जिसे नन्दन पहाड़ कहते हैं। शहर के पश्चिम में एक नदी है, जिसे उदावरी कहते हैं। पास ही एक धारा और बह गई है जो यमुनाजोर कहलाती है। शहर में अनेक तालाब हैं, जिसमें शिवगंगा का विशेष महत्व है। इस तालाब में स्नान करने के बाद ही लोग बैद्यनाथ की पूजा करने जाते हैं। इस तालाब के पास ही एक तालाब और है जो मानसिंही के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं तालाबों के पास कर्मनाशा नाम की एक छोटी सी जलधारा बहती है, जिसे लोग रावण के पेशाब की धारा मानते हैं, और उसका जल अपवित्र समझा जाता है।

यहाँ ठहरने के लिए अनेक धर्मशालाएं, निरीक्षण भवन, होटल आदि की पर्याप्त सुविधा है। जसीडीह में भी अनेक श्रीमन्तों की ओर से बंगले बने हुए हैं। श्री बैद्यनाथ धाम में अनेक दर्शनीय स्थान हैं, जिनका ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व है। जिनमें नौलखा मन्दिर, तपोवन, त्रिकूट, हरिला जोड़ी, दोलमंच, बैजू मन्दिर, रोनाल्ड मठ, चन्दन पहाड़, चोल पहाड़, लीला मन्दिर आदि प्रमुख हैं।

नौलखा मन्दिर- आजकल बैद्यनाथ धाम में इस मन्दिर का बड़ा नाम है। इसे युगल मन्दिर भी कहते हैं। इसे कलकत्ते की श्रीमती चारुशीला दासी ने बनवाया था। यह मन्दिर करनीबाग मुहल्ले में है।

तपोवन- बैद्यनाथ धाम से ६ किमी. दक्षिणपूर्व में एक ऊँचा पहाड़ है। इस स्थान में तपोवन नाम का शिवलिंग है। शूलकुण्ड नाम का एक कुण्ड भी है। यहाँ के लोग इसको महर्षि वाल्मीकि का तपोवन बतलाते हैं।

त्रिकूट- देवघर से १६ किमी. पूर्व की ओर एक चन्द्राकार पर्वत है। इसके नीचे त्रिकूटेश्वर महादेव विराजमान है। इसी पहाड़ से मयूराक्षी नाम की नदी निकलती है। यहाँ मयूर पक्षी भी बहुतायत से पाये जाते हैं।

यहाँ का आरोग्य भवन जो जसीडीह में स्थित है, सारे भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ पर प्राकृतिक चिकित्सा की जाती है। यह भी कहावत है कि 'कोढ़ियों का अड्डा बैद्यनाथ'। यहाँ राजकुमारी कुष्ठाश्रम भी है, जिसे कलकत्ते के योगीन्द्रनाथ नामक एक बंगाली सज्जन ने सन् १८७२ में स्थापित किया था। यहीं पर डाबर ग्राम में डाबर की आयुर्वेदीय औषधियों का निर्माण का कारखाना भी है। बैद्यनाथ आयुर्वेद की स्थापना भी सर्वप्रथम यही हुई थी।

कपूत जायो भलो न आयो

सं० – डॉ० सांवरमल नदीवाला

पर थे। नागरियाँ क्रांति न समझतीं किन्तु मातृत्व पर चोट समझ सकती थीं। देवकी की पीड़ा हर माँ की पीड़ा थी। हर माँ निरंकुश शासन को चुनौती दे-दे कर बालपूजन कर रही थी। अन्यायी शासक को ललकार-ललकार कर बाल-उपासना कर रही थी।

अभी तक मगध से यज्ञपूजन की नई परम्परा मथुरा में स्थापित करने के लिए राजा द्वारा स्थान-स्थान पर मणिभद्र यज्ञ, जरायक्षी की मूर्तिया बनवायी जाती थीं। अब राज-शिल्पियों को मूर्तिशिल्प हेतु नई कल्पना, एक नया आयाम मिल गया था। वे छिप-छिप कर भव्य मूर्तियां बना रहे थे। धीरे-धीरे घर-घर में मूर्तियाँ गढ़ी जाने लगी। लोग मूर्तियां नहीं गढ़ रहे थे। क्रान्ति में अपनी आस्था उकेर रहे थे। अद्भुत उत्साह नर-नारी के मनप्राणों पर छाया था। सांझ होते ही घर-घर में आरती होती

जाकर गदहे पर लादा जाता है।

❖ **कदे घी घणा, कदे मूठी चणा।**
कभी घी से तर भोजन मिलता है तो कभी मुट्ठी भर चनों पर ही संतोष करना पड़ता है।
मि० क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः (भर्तृहरि)

❖ **कदे नाव गाडी पर, कदे गाडी नाव पर।**
कभी नाव गाड़ी पर, कभी गाड़ी नाव पर।
नाव जो सूखे में बनाई जाती है, उसे लढ़े पर लाद कर दरिया में ले जाते हैं, और लढ़ा जब दरिया के पार उतारा जाता है, तब नाव पर चढ़ाके।

❖ **कनफड़ा दोन्यू दीन बिगाड़्या।**
निकृष्ट साधु दोनों दीन से गये।
मि० न घर का, न योग ही सध पाया।

❖ **कन्या फूले, तुल फले, वृश्चिक ल्यावै लाण।**
कन्या राशि (अश्विन) में पूल उत्पन्न हो, तुला राशि (कार्तिक) में फल लगे तो वृश्चिक (मार्गशीर्ष में) फसल काटो।

❖ **कपड़ा फाट गरीबी आई, जूती टूटी चाल गमाई।**
कपड़े फट गये और गरीबी आ गई। ज्योंहि जूते टूटे, चाल का मजा जाता रहा।

❖ **कपूत जायो भलो न आयो।**
कुपुत्र सभी तरह बुरा है चाहे वह औरस हो, चाहे गोद आया हो।

❖ **कवित सोवै भाट नै, खेती सोवै जाट नै।**
कवित्त भाट को शोभा देते हैं, खेती जाट को शोभा देती है।

❖ **कबूतर नै कुवो ही दीखै।**
कबूतर को कुआँ ही दिखलाई पड़ता है।
गरीब अपनी रक्षार्थ शरणदाता के पास जाता है।

❖ **कम खाले़णा पण कम कायदे नहीं रहणा।**
कम खा लेना अच्छा है, किन्तु आत्मसम्मान खोकर रहना अच्छा नहीं।

❖ **कमजोर की लुगाई, सबकी भौजाई।**
कमजोर की पत्नी को सबकी भाभी कहते हैं।
मि० गरीब की जोरू सैकी भाभी। ●

वेणुवन

गतांक से आगे ....

—डॉ० चित्रा चतुर्वेदी 'कार्तिका'

देवकी व वसुदेव के कारागृह में जाते ही आँधी की भाँति स्त्रियों की भीड़ हरहराती हुई उमड़ पड़ी थी देवक के घर में। देवकी के एक-एक बालकृष्ण वे उठाकर ले चलीं, आँचल में छिपाकर अपने-अपने घर।

विद्रोह! प्रतिकार! स्त्रियों में जागरण! अब हर स्त्री पूजेगी शिशु-विग्रह को। देखें, कंस कहाँ तक तोड़ता है! जिसको बाद में ज्ञात हुआ वे भी दौड़ती-झपटती हुई आई कि कोई बालमूर्ति उन्हें भी मिल जाए।

घर-घर में कृष्ण-उपासना फैल चली। कंस द्वारा अन्याय, अत्याचार व उत्पीड़न का प्रतिशोध एक-एक स्त्री-पुरुष, बाल-उपासक ले रहा था। कंस को चुनौती दे देकर घर-घर में बालउपासना हो रही थी। कृष्ण-उपासना के स्थल धीरे-धीरे क्रांति के गढ़ में बदल चले। विचारों का आदान-प्रदान स्वरों में होता। क्रान्ति की योजनाएं बनतीं। हर यदुवंशी की मर्मव्यथा के प्रतीक थे वसुदेव तथा देवकी और हर यदुवंशी की क्रांतिकारी आकांक्षा का प्रतीक था देवकी की माटी का बालकृष्ण। देवकी-सुत ब्रज में पल रहा है। बड़ा होगा तब कंस-वध करेगा। किन्तु तब तक माटी का बालक ही यादवों में अदम्य वीरता का संचार करता। मथुरा में माटी का बालकृष्ण क्रांति का प्रतीक बन गया था। निरंकुशता के विरोध का प्रतीक बन गया बाल-पूजन।

माली फूलों की टोकरी में बालकृष्ण की मूर्तियाँ

ऐतिहासिक और पौराणिक महत्व है। जिनमें नौलखा मन्दिर, तपोवन, त्रिकूट, हरिला जोड़ी, दोलमंच, बैजू मन्दिर, रोनाल्ड मठ, चन्दन पहाड़, चोल पहाड़, लीला मन्दिर आदि प्रमुख हैं।

नौलखा मन्दिर– आजकल बैद्यनाथ धाम में इस मन्दिर का बड़ा नाम है। इसे युगल मन्दिर भी कहते हैं। इसे कलकत्ते की श्रीमती चारुशीला दासी ने बनवाया था। यह मन्दिर करनीबाग मुहल्ले में है।

तपोवन– बैद्यनाथ धाम से ६ किमी. दक्षिणपूर्व में एक ऊँचा पहाड़ है। इस स्थान में तपोवन नाम का शिवलिंग है। शूलकुण्ड नाम का एक कुण्ड भी है। यहाँ के लोग इसको महर्षि वाल्मीकि का तपोवन बतलाते हैं।

त्रिकूट– देवघर से १६ किमी. पूर्व की ओर एक चन्द्राकार पर्वत है। इसके नीचे त्रिकूटेश्वर महादेव विराजमान है। इसी पहाड़ से मयूराक्षी नाम की नदी

छिपाकर दूर-दूर पहुँचाते। कुम्हारिनें कुंभों में छिप-छिपा कर बालपूजन का प्रचार करतीं। स्त्रियाँ आँचल में छिपाकर देवकी के बालकृष्ण एक घर से दूसरे घर पहुँचातीं। पुरुषों के शीश पर बंधे उष्णीशों में छिपी मूर्तिया एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाई जातीं। बालकृष्ण के साथ पहुँचता क्रान्ति का संदेश। मौन आह्वान! सावधान होने का। तत्पर होने का। देवकी के पूत की छाया का प्रभाव दिन-दूना रात-चौगुना फैल रहा था।

बालविग्रह की मांग बढ़ती जा रही थी। कुम्हारों

के चाक अब और वेग से घूमने लगे। कुम्हारिनें और भी मनोयोग से मूर्तियाँ गढ़ती। गीत गा-गा कर मूर्तियाँ गढ़तीं। प्रेम उमड़-उमड़ पड़ता जब उस मूर्ति को कुम्हारिने सजातीं। देवकी के पीड़ागीत हर मुख पर थे। नागरियाँ क्रांति न समझतीं किन्तु मातृत्व पर चोट समझ सकती थीं। देवकी की पीड़ा हर माँ की पीड़ा थी। हर माँ निरंकुश शासन को चुनौती दे-दे कर बालपूजन कर रही थी। अन्यायी शासक को ललकार-ललकार कर बाल-उपासना कर रही थी।

अभी तक मगध से यज्ञपूजन की नई परम्परा मथुरा में स्थापित करने के लिए राजा द्वारा स्थान-स्थान पर मणिभद्र यज्ञ, जरायक्षी की मूर्तिया बनवायी जाती थीं। अब राज-शिल्पियों को मूर्तिशिल्प हेतु नई कल्पना, एक नया आयाम मिल गया था। वे छिप-छिप कर भव्य मूर्तियां बना रहे थे। धीरे-धीरे घर-घर में मूर्तियाँ गढ़ी जाने लगी। लोग मूर्तियां नहीं गढ़ रहे थे। क्रान्ति में अपनी आस्था उकेर रहे थे। अद्भुत उत्साह नर-नारी के मनप्राणों पर छाया था। सांझ होते ही घर-घर में आरती होती अपने काल्पनिक मुक्तिदाता की। वे बलैंया लेते। उसके दीर्घायु होने की कामना करते। सांझ होते ही घर-घर में घंट-घड़ियाल बज उठते और चारो ओर से शंखों का महाघोष राजमहल की प्राचीरों से टकरा उठता।

और फिर कंस किसी भी घर में आँधी की भांति अचानक ही घुस कर उखाड़-पछाड़ मचा देता। देवकी के आठवें पुत्र के प्रतीक की पूजा है यह! वीरपूजा! हाँफ-हाँफ कर पाँवों से कुचल देता मूर्तियों को। फूत्कार कर-कर के उन्हें भित्तियों से मार-मार कर चूर-चूर कर देता।

तुरन्त दूसरे ही दिन और भी वेगवान् बरसाती नदी की सबल धारा सी हरहरा उठती हर अबला। शिशु-पूजन और बढ़ता गया। देवकी के प्रति करुणा प्रतिपल बढ़ती गई। असंतोष और आक्रोश हर दिन उग्र होता गया।

रातों-रात मथुरा के चौराहों पर वीरबालक की मूर्ति स्थापित कर दी जाती। एक दिन प्रमुख चौराहे पर राज-देव मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा के ठीक निकट ही एक मुरलीधर गोपाल का बड़ा सा विग्रह स्थापित था। फूलों, रोली-अक्षत व चन्दन से पूजित प्रतिमाओं के सामने असंख्य दीपक प्रज्ज्वलित किए जाते। भोर होते ही कंस के अधिकारी स्तब्ध रह जाते इस खुली चुनौती को देख। कंस आदेश देता फिरता। कर्मचारी मूर्तियों को तोड़कर गिराते। किन्तु दूसरे दिन हर गली, हर पथ और हर चौराहे पर असंख्य बालकृष्ण विहंस उठते। बालकृष्णों की विराट वाहिनी से मथुरा नगरी पटी पड़ी थी। सशस्त्र वाहिनी भी उसके सामने निर्बल सिद्ध हो रही थी।

असंख्य स्त्री-पुरुषों के मुट्ठी बंधे हाथ चुनौती की भाँति राजमहल की ओर दिन में न जाने कितनी बार दृढ़ता से उठ जाते। दमन की प्रतीक शिल्पकला को सचेत नागरिकों मे तुरंत क्रांति-कला में परिणत कर डाला था। मूर्तिपूजन दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ रहा था।

देवकी के एक-एक बालक के तो प्राण ले डाले नराधम ने। अब बालक की परछाहीं से भी मरे को शत्रुता। तो क्या करे बेचारी? कहाँ जाए दुखियारी? और निठुर राजा? तुझे तो नरक में भी ठौर न मिलेगा। सत्यानाश हो जाए तेरा! सत्यानाश हो जाए तेरा! सत्यानाश हो जाए तेरा!

देवकी की पीड़ा को मथुरा के हर नागरिक ने मन में बसा लिया था। सबने उसकी पीड़ा को बांट लिया था। देवकी की पीड़ा को आत्मसात करके उसे घूँट-घूँट पिया था सबने। देवकी की पीड़ा हर स्त्री की पीड़ा थी, हर पुरुष की पीड़ा थी। देवकी की पीड़ा समूची मथुरा की पीड़ा बन गई थी।

हर स्त्री-पुरुष ने देवकी के प्रति अन्याय का विषघूँट कंठ में धारण कर रखा था। पी जाने को नहीं। विष पिया नहीं जाता। सहा नहीं जाता। फूट पड़ता है। उसका वमन कर देना ही उचित है। किन्तु अभी नहीं। विष को और प्रगाढ़ होने दो। और प्रभावशाली होने दो और तीक्ष्ण होने दो और तीव्र होने दो।

सब शांत थे। मथुरा में अभूतपूर्व शांति छाई हुई थी। भयावह शांति। विराट झंझावात् के पूर्व की सी शांति समूचा शौरसेन प्रदेश मृत शरीर की भाँति रोमहर्षक काल-शांति में लिपटा पड़ा था। उस शांति के पीछे थी क्रांति की सुगबुगाहट।

सहस्त्रो हृदयों की आशा जुड़ गई थी मथुरा के एक काल्पनिक सपूत के आगमन से। एक नवीन आशा जागी थी। विश्वास था। कृष्ण-उपासना के साथ-साथ, घर-घर में अस्त्र-शस्त्रों को चमकाया जाता। उनकी धार तीक्ष्ण की जाती थी। तलघरों में नए-नए अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हो रहा था।

और! दूसरी ओर!

समूची राजधानी दिनरात जिसको स्मरण कर करके प्राण दिए दे रही थी, वह नन्हा सिंह-शावक गोकुल में माखन-मिश्री से तृप्त हो पेट फुलाए लकुटी हिला हिलाकर निर्द्वन्द गौएँ चराता फिरता था।

गोकुल में उन दिनों वन्य-पशुओं का आतंक बढ़ चला था। वैसे भी जब से पूतना का आगमन व मृत्यु हुई तभी से गोकुलवासियों के मन में भय भर गया था। उनका दृढ़ विश्वास था कि कान्हा में कोई अलौकिक तत्त्व है जिसने पूतना का वध कर डाला। उसके बाद एक बार विकट धूल भरी आँधी आई और तीव्र वेग से घूमते हुए बवंडर के भंवर में नन्हा कान्हा फँस गया तथा आँधी काफी ऊपर ले गई उठाकर उसे। यह भी चमत्कार ही था कि कान्हा को खरोंच भी न आई। पर तब से अनिष्ट की आशंका से वे लोग और भी त्रस्त हो उठे। वे निरापद स्थान पर जाकर बसने का विचार कर ही रहे थे कि अचानक वहाँ भयंकर हिंसक वृकों का विराट दल आकर प्रतिदिन उत्पात करने लगा। अब विलम्ब करना सम्भव न था। नन्द के परम मित्र वृषभानु यमुना पार वृन्दावन में रहते थे। अपने गाँव बरसाना के निकट ही उन्होंने नन्द से बसने का आग्रह किया।

पाँच वर्षीय कान्हा के लिए गोकुल से वृन्दावन की यात्रा एक रोमांचक अनुभव थी। शकट के शकट गोप-गोपियों से लद-लद कर चले जा रहे थे। साथ में सब गौएं, गोवत्स रँभाते हुए चल रहे थे। विकट कलरव-निनाद था पक्षियों की भाँति। यही नहीं, गोकुल के पक्षी-वृंद पहले तो कुछ समझ न पाए थे कि यह कैसा प्रयाण हो चला गोकुल को सूना करके। फिर पक्षी भी उड़ चले उस यात्रा में साथ-साथ। कभी वे आकाश पर लम्बी-लम्बी उड़ाने भरते आगे निकल जाते और फिर किसी वृक्ष पर सुस्ता कर लौट आते यात्रा के साथ चलने को। कई बार वे भी शकटों, वृषभों और गायों पर बैठे-बैठे आनन्द से चहचहाते हुए चले। गोप लोग भाँति-भांति के पर्णवाद्य बजाते चल रहे थे। कान्हा भी एक बांसुरी बजाता शकट पर खड़ा-खड़ा झूम रहा था।

.......क्रमशः

श्रीकान्त फाउण्डेशन

'कृष्णा बिल्डिंग', 224, आचार्य जगदीशचन्द्र बोस रोड, 5वीं मंजिल, कमरा नं0 511 कोलकाता- 17
दूरभाषः (033) 2280-0359

आज हम पूरे विश्व को अपने मुट्ठी में कर चुके हैं। एक बटन दबाते ही विश्व के किसी भी कोने में सम्पर्क किया जा सकता है। किन्तु हमारी मानसिकता इतनी संकुचित होती जा रही है कि गाय, पशु-पक्षी, दरिद्रनारायण के प्रति सेवा-भाव को कर्तव्य नहीं बल्कि बोझ समझने लगे हैं। हमारे विचार और कल्पनाएं मानव-कर्म की सीमा बन गई हैं। 'श्रीकान्त फाउन्डेशन' के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों का उन्मूलन, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों का परिमार्जन तथा शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु गरीबों के लिए सहायता का कार्य और कर्ज, गरीबी आदि से ग्रसित लोगों को उन्मुक्त करने का प्रयास किया जा रहा है। गौशला गुढ़ागौड़जी, जिला : झूंझुनू (राजस्थान) में पिछले 16वर्षों से 400 गायें रखने वाला भारत का प्रथम संस्थान : "श्री कान्त फाउन्डेशन"। आइये! आप भी हमारे साथ अपना कदम मिलायें तथा हमारा मार्गदर्शन करें।

हमारे श्रेयस्कर कार्य

✦ गो-सेवा (४०० गायों की सेवा) ✦ पक्षी-पुरी ✦ एम्बुलेंस-सेवा ✦ जल-सेवा ✦ मन्दिर-स्थापना ✦ शिव-प्रतिमा ✦ पर्यावरण संरक्षण ✦ अन्नपूर्णा-क्षेत्र ✦ ब्राह्मण भोजन ✦ हरित क्रांति ✦ सूखे घास चारे की व्यवस्था ✦ शिक्षा का प्रचार-प्रसार (५०० विद्यार्थी अध्ययनरत) ✦ गो-पुरी ✦ कथा-सेवा ✦ वस्त्र-सेवा ✦ कृषि ✦ साधना-केन्द्र ✦ औषधि-निर्माण ✦ कन्यादान ✦ हमारे पथ-प्रदर्शक (भारत का सन्त समाज) ✦ हमारे सम्पन्न आयोजन (८५० कथायें) ✦ हमारे प्रकाशन ('रस-बनमाली'- मासिक पत्रिका) ✦ हमारे भजन एवं कथा कैसेट्स

✦ **सदस्यता- वार्षिक ११०० रुपये, आजीवन ११००० रुपये**

श्रीकान्त फाउण्डेशन की सदस्यता ग्रहण कर राष्ट्र, समाज तथा स्वयं के सुनहरे भविष्य के निर्माण में अपनी अग्रणी भूमिका निभायें।

'रस-बनमाली' की सदस्यता हेतु विभिन्न नगरों के सम्पर्क-सूत्र :-

- श्री चम्पालाल सरावगी
सवेरा सारीज
95, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता-16
✆: 22261695
- श्री ओमप्रकाश छावड़िया
C/o. शांति निकेतन भवन
कमरा नं०- 6, 6th, फ्लोर
कलकत्ता- 17
✆: 22826663
: 22826664
- श्रीमती रमा गुजराल
के.1556 पालम विहार
गुड़गाँव (हरियाणा)
✆: 2366175
- श्री महावीर प्रसाद टाँटिया
सी- २/३३ माडल टाउन- ३
दिल्ली- ९ ✆: 27133891
M. 9811083393
- श्री लक्ष्मण सिंह
टैगोर नगर (जेल के पास)
बलिया 277001 ✆: 220692
- श्री सजनकुमार डालमिया
मे. पी. आर. इण्टरप्राइजेज
आर्यकुमार रोड,
राजेन्द्रनगर
पटना- 800016
✆: 0612-2663546
- श्री रामप्रसाद हलवाई
44, चेतन क्लाथ मार्केट
सारंगपुर, गेट,
अहमदाबाद- 380001
✆: 22114175, 27864511
- श्री सत्यनारायण जायसवाल
संतोष कुटी, नई सड़क
उज्जैन (म.प्र.)
✆: 0734-2554091, 2551014
- श्री मोहन लाल जी अग्रवाल
में. पवन मेडिकल स्टोर्स
भालोटिया मार्केट, टाउन हाल
गोरखपुर (उ.प्र.)-5
✆: 0551-2337521, M. 9415322662
- श्री गुलजारी लाल टीबड़ेवाल
में. रमेश कुमार सुशील कुमार
पाण्डेय हाता, पो. गीताप्रेस
गोरखपुर (उ.प्र.)-5
✆: 0551-2333731
- श्रीमती अरुणिमा
'रामकुंज', 1860/5, पाँचवाँ मेन
आर.पी.जी. ले-आउट,
2 स्टेज, विजयनगर
बैंगलोर- 560040
✆: 080-23300878
- श्री शिवकुमार कानोडिया
'गणेशालय',
पॉलीटेक्निक रोड
धनबाद- 828111
✆: 203072, 204772
- श्री किशोरीलाल बगड़िया
मे. केदारनाथ किशोरीलाल अग्रवाल
पाण्डेयगंज, लखनऊ- 4
✆: 2229143
- श्री बनवारीलाल पोद्दार
जोलीमेकर अपार्टमेंट-1,
19वाँ माला,
फ्लैट नं. ए, 194-ए, क़फ परेड,
मुम्बई- 5
✆: 22184547, 22153933
- श्री संतकुमार झुनझुनवाला
42, मेघना, एस.वी. रोड
शांताक्रुज, (प.), मुंबई- 54
✆: 26460252, 26042168
- श्रीमती प्रमोदिनी मोदी
22/6, 'पारिजात'
जे.वी. नगर, मुंबई- 59
✆: 28321711, 28207667
- श्री गणेश चौधरी
12-A-201, अशोक नगर
भीवण्डी, थाणे (महा.)
✆: 02522-246632
- श्री श्यामनाथ शर्मा
22-A, अशोक नगर
7th फ्लोर, फ्लैट नं० 701-702 भीवण्डी, थाणे (महा.)
✆: 02522-247114
- श्री सुशील कुमार कानोडिया
मे. कानोडिया लुब्रिकेटिंग कं०
128/379 के ब्लाक,
किदवई नगर, कानपुर
✆: 0512-615264(R)
363564(O)
- श्री संजय अग्रवाल
101, अश्वमेध एपार्टमेंट,
पार्ले प्वाइंट,
अम्बिका निकेतन रोड, सूरत
✆: 220861
- श्री श्रवण कुमार निर्मला नायल
C/o. श्रवण इण्टरप्राइजेज
7- शुभम मार्केट, छावनी बाजार,
बहराइच,
✆ 234022(O), 232895(R)
- श्री जगदीश प्रसाद तुलस्यान
C/o. तुलस्यान ट्रेडिंग कं०
सुभाष चौक, पडरौना, कुशीनगर
- श्री अमरीश गोयल
C129, चक, होटल न्यु शान्ति के पीछे, इलाहाबाद (उ.प्र.)
✆ 0532-2414597, 2400747

आध्यात्मिक मासिक पत्रिका

सदस्यता फार्म

मैं .... आध्यात्मिक मासिक पत्रिका 'रस-बनमाली' का सदस्य बनना/नवीनीकरण चाहता/चाहती हूँ। एतदर्थ मैं इस फार्म के साथ सदस्यता शुल्क

रु. रु. (शब्दों में) ....

वार्षिक ☐ छः वर्षीय ☐ बारह वर्षीय ☐ पेट्रन ☐ सेवा निधि ☐ नकद/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा भेज रहा/रही हूँ।

पूरा नाम .... आयु ....

पूरा पता ....

....

फोन नं० ....

पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

चैक/ड्राफ्ट नं० .... दिनांक ....

बैंक ....

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	१००/-
छः वर्षीय	५००/-
बारह वर्षीय	१०००/-
पेट्रन निधि	५०००/-
सेवा निधि	(स्वैच्छिक)

पत्राचार का पता

श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति
द्वारा- कमलेश बाजोरिया
के. ४६/१०८ ए, विशेश्वरगंज, वाराणसी- २२१००१
फोन : ०५४२-२४४०६१२

नोट : कृपया मनीआर्डर/ड्राफ्ट "श्रीमद्भागवत ज्ञान-यज्ञ प्रचार समिति" के नाम ही भेजें।

निवेदन- आप स्वयं सदस्य बनकर तथा अपने परिचितों व मित्रों को सदस्य बनने के लिए प्रेरित करके इस सत्कार्य में सहयोग कर सकते हैं। आवश्यकतानुसार इस सदस्यता फार्म की फोटोस्टेट प्रतियाँ करवाकर भी मित्रजनों से भरवाकर भेज सकते हैं।